

**TEXT CUT WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186148

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H341.1

Accession No. P.G H 1263

Author H 16 V

Title [॥]
हॉफमैन
विद्व - शान्ति के उपाय

This book should be returned on or before the date
marked below.

मिश्रित

विश्व-शान्ति के उपाय

लेखक
पॉल हॉफमैन

प्रगति-प्रकाशन
नयी दिल्ली

कापी राइट

१९५२

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स १४ डी०, फिरोजशाह रोड,
नयी दिल्ली के लिये प्रकाशित और शारदा मुद्रण,
बनारस द्वारा मुद्रित । मूल्य दो रुपया चार आना ।

प्रथम परिच्छेद

शान्ति हो या युद्ध हमारा एक मात्र ध्येय शान्ति

पिछले वसन्त की बात है कि एक दिन शाम के समय बर्नार्ड बरूक हमारे यहाँ भोजन करने आये। बातचीत करते-करते हम उस भाषण पर विचार करने लगे जो मैं वेलेज़ली कालिज में देने वाला था। इस भाषण में, जैसा कि मैंने श्री बरूक को बताया, मैं वेलेज़ली कालिज के छात्रों तथा विदुषियों को संसार के स्वतन्त्र देशों तथा रूस के शासकों के बीच छिड़े भीषण संघर्ष के विषय में कुछ बताना चाहता था।

हमारे अतिथि हमारे युग के इस महत्त्वपूर्ण विषय पर माने हुए अधिकारी हैं। जैसे-जैसे विचार विमर्श बढ़ता गया वह बड़ी उत्कंठा के साथ कभी मेरी ओर और कभी श्रीमती हौफमैन की ओर झुक कर मेरे विचार सुनने लगे।

जब मैंने श्री बरूक को बताया कि मेरे भाषण का शीर्षक था “ठंडी लड़ाई भी युद्ध ही है” (“Cold war is a good war”) तो उन्होंने ने अपने स्वभावानुसार आकस्मिक सा उत्तर देते हुए कहा, “आप साधारण जनता को इस संघर्ष का वास्तविक अर्थ उस समय

विश्व शान्ति के उपाय

तक नहीं समझा सकेंगे जब तक कि आप 'ठंडी लड़ाई' (Cold War) की बात बन्द करके शान्ति संघर्ष की बात शुरू न करेंगे।

मैंने श्री बरुक का परामर्श स्वीकार किया और वेलेज़ली कालिज के अपने भाषण में 'शान्ति के लिए कैसे संघर्ष किया जाय' यही बताया। कुछ दिन बाद भूकम्प की भाँति घटनाएँ घटीं और दुनिया मानो हिलने लगी। ऊपरी दृष्टि से देखने से पता लगता था कि ऐसे समय में शान्ति की बात करना तथ्यहीन सा है। २५ जून सन् १९५० ई० को उत्तरी कोरिया ने कोरिया प्रजातन्त्र पर प्रहार कर दिया। कम्युनिस्टों ने अपनी स्वभावगत छद्मपूर्ण भाषा के प्रयोग कर के इस को केवल शान्ति स्थापना के लिए एक साधारण सा प्रयत्न बताया, और यह सब उस समय की बात है जब कि उन के टैंक तथा तोपें ३८ अक्षांश के उस पार पृथ्वी को रौंदती चली जा रही थीं। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् ने इस आक्रमण को अकारण अतिक्रमण दिखाया और "अपने सदस्यों को आदेश दिया कि वे इसको रोकने में सहायता दें"। इस आदेश को पा कर संयुक्त राष्ट्र की जो सेनाएँ—जिन में अधिकांश अमरीका की ही सेनाएँ हैं—वहाँ गयीं। उन को अनेक परिवर्तनशील परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है; कभी उन को पराजय मिली है तो कभी विजय। उत्तरी कोरिया की सहायता के लिये कई लाख चीनी ऐसे सैनिक आ पहुँचे जिन को चीन के कम्युनिस्ट शासकों ने "स्वयं-सेवक" बताया तो अन्तर्राष्ट्रीय तनाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

संसार की स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि १६ सितम्बर सन् १९५० को प्रेज़ीडेंट ट्रूमैन ने 'राष्ट्र संकट में है' यह घोषणा कर दी। जापान पर विजय प्राप्त किये अभी मुश्किल से छः वर्ष भी नहीं हुए थे कि अमरीका अपने नागरिकों, सामग्री और मशीनों को फिर सैनिक शक्ति के रूप में

शान्ति हो या युद्ध हमारा एक मात्र ध्येय शान्ति

करने में जुट गया। उधर रूस के शासक बिना किसी आव-
रण के ईरान और सऊदी अरब के तेल के स्रोतों पर लालच भरी दृष्टि
जगाये हुए हैं। और प्रायः प्रत्येक देश में — फ्रान्स, इटली, लेबानान
और इंडोनीशिया में ही नहीं — कम्युनिस्टों का आंदोलन, तोड़-फोड़
प्रचार नित नयी गति और नये आकार-प्रकार के साथ बढ़ते जा रहे हैं
और आकाश से होने वाले वज्रपात के भय के समान रूस की लाल
सेना अटलांटिक महासागर की ओर कूच करने की धमकी दे रही है।

मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि इन सब चालों और आंदोलनों
का अर्थ केवल यही है कि संसार के स्वतन्त्र देशों को इस समय बड़े
संकट का सामना करना पड़ रहा है। इसी कारण मैं यह विश्वास
करता हूँ कि हम को शान्ति के लिये पहले से भी अधिक प्रयत्नशील
होना चाहिये। मैं यह नहीं मानता कि आज की स्थिति में शान्ति के
ये प्रयत्न करना आकाश कुसुम के समान है।

मेरा यह विश्वास है कि सत्य ठीक इस के प्रतिकूल है। इस में
इ संदेह नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य राज्य नायकों के
शान्ति प्रयत्नों के बावजूद भी हम तीसरे विश्व युद्ध में पड़ सकते हैं।
यदि ऐसा हुआ तो हम को इस में शान्ति के लिये एक निर्दिष्ट कार्यक्रम
को ले कर सम्मिलित होना चाहिए। ऐसा करने से उस युद्ध को सही
दिशा में चलाया जा सकेगा। हमको युद्ध करना चाहिए किन्तु सामरिक
सफलता ही के लिये नहीं बल्कि शान्ति की स्थापना के लिये।

मेरा यह विश्वास है कि यदि हम दूरदर्शिता, साहस तथा संल-
ता के साथ तुरन्त अपना प्रयत्न आरम्भ कर दें तो हम युद्ध की
शाला को फैलने से रोक सकते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम
पानी शान्ति प्रेरणा को धक्का पहुँचाते हैं, और समक्षदार और सभ्य

विश्व शान्ति के उपाय

प्राणी होने के नाते इतिहास के प्रति इस अद्वितीय शोणितस्नान को रोकने के लिये हमारा जो कर्तव्य है उससे मुँह मोड़ते हैं ।

शान्ति के लिये बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयत्न करने के लिये हमको यह समझ लेना होगा कि इस बार हम को किस प्रकार के युद्ध का सामना करना है । जैसा कि दूरदर्शक एवं पारखी रीअर एडमिरल बर्न एंडरसन (Rear Admiral Burn Anderson) ने जो अमरीका की नाविक सेना के अवकाश प्राप्त अधिकारी हैं बताया है, रूस संसार के असाध्यवादी देशों के विरुद्ध एक नये प्रकार का युद्ध कर रहा है । युद्ध शब्द के सुनते ही हम में से अधिकांश लोगों के मस्तिष्क में एक ऐसी स्थिति का चित्र बन जाता है जिसमें रुधिर बहता हो, विध्वंस हो रहा हो, शारीरिक हिंसा तथा विनाश हो, सेनाएँ परस्पर टकराती हों, सड़कों पर खचाखच शरणार्थी भरे चले जाते हों, नगर टूटे पड़े हों और समुद्र की सतह पर तेल बह रहा हो । हममें से अधिकांश लोग युद्ध का एक मात्र अभिप्राय सामरिक क्षेत्र में विजय प्राप्त करना ही समझते हैं; किन्तु रूस के शासकों के लिये संसार के स्वतन्त्र देशों के विरुद्ध अनवरत रूप से चलने वाले युद्ध में सैनिक कार्यवाही तो स्पष्ट, एवं चकाचौंध आकर्षणात्मक पैदा करने वाला द्वन्द्व मात्र ही है । हमारे लिये यह एक विचित्र, नया और छुपा हुआ खतरा है—ऐसा खतरा जिसको हम केवल शस्त्रों के द्वारा ही दूर नहीं कर सकते । हम को यह समझना होगा कि रूस के शासकों के लिये सेना तो उन चार मोरचों में से केवल एक ही मोरचा है जिन पर वे बिना किसी ढील या विराम के युद्ध करते ही रहते हैं । ये चारों मोर्चे हैं सैनिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक । स्वयं लेनिन उनकी ऐसी ही परिभाषा की थी । उसने कहा था, ये चारों मोरचे एक ही युद्ध के अविच्छिन्न भाग हैं—ऐसे युद्ध के जो “दृढ़ निश्चय

शान्ति हो या युद्ध हमारा एक मात्र ध्येय शान्ति

तथा नृशंसता के साथ निरन्तर चलता रहता है, जो कभी रक्त पूर्ण होता है तो कभी रक्तहीन, कभी हिंसात्मक, तो कभी अहिंसात्मक, कभी सैनिक है तो कभी आर्थिक; कभी शिक्षा क्षेत्र में चलता है तो कभी शासन प्रबन्ध के क्षेत्र में। इसका एक मात्र अभिप्राय यह है कि पुराने समाज की शक्तियों और परम्पराओं को नष्ट कर दिया जाय।”

जैसा कि हम जानते हैं अपने सामरिक मोर्चे पर सोवियट रूस ने एक विशाल युद्ध मशीन सन्नद्ध एवं संचालित कर रखी है। पूर्वी योरप में अपने प्रभाव क्षेत्र के अपने पिट्टू राष्ट्रों तथा एशिया के अपने सहयोगियों और कठपुतलों की समस्त सैनिक शक्तियों को उसने अपने हाथ में कर लिया है।

आर्थिक मोर्चे पर सोवियट रूस ने अपने खेतों, कल कारखानों और अपने अधिकृत देशों के कल कारखानों को युद्ध जैसी स्थिति के लिये तैयार कर लिया है। जिन क्षेत्रों पर उस का प्रत्यक्ष अधिकार नहीं है वहाँ उसने आर्थिक स्थिरता और उन्नति कार्यक्रम योजनाओं को अस्त-व्यस्त करने की चेष्टा की है। हड़ताल, तोड़फोड़ और कार्य-शिथिलता संगठित करना उस का नित्य प्रति का काम है। मजदूर को यदि तनख्वाह कम मिलती हो तो यह उस से उत्पन्न होनेवाले मजदूर के असंतोष से लाभ उठाता है, जहाँ किसान के पास भूमि है और लगान अधिक है वहाँ किसान के क्रोध से लाभ उठाने की चेष्टा करता है, जहाँ किसान के पास भूमि नहीं है वहाँ वह उस की भूमि की भूख को जागृत कर के स्वार्थ को सिद्ध करने का प्रयत्न करता है।

राजनीतिक मोर्चे पर सोवियट रूस ने अपनी जनता के मताधिकार और वाणी को कुचल दिया है और जिन देशों को इस ने अपने आधीन कर लिया है वहाँ भी ऐसी ही स्थिति की पुनरावृत्ति की गयी

विश्व शान्ति के उपाय

है। स्वतन्त्र देशों में इस के गुमाश्ते जनता में अपनी सरकारों की ईमानदारी, मन्तव्य और कार्य-प्रणाली के प्रति सन्देह उत्पन्न करते रहते हैं। एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से भिड़ाना, संसार के स्वतन्त्र देशों की मैत्री और पारस्परिक श्रद्धा को भंग करना, और संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कार्यवाही का निराकरण करना इस का आये दिन का काम है।

मनोवैज्ञानिक मोर्चे पर सोवियट रूस समाज के विभिन्न भागों में संघर्ष, सन्देह और अविश्वास पैदा करने की चेष्टा करता है; मजदूर को मालिक के विरुद्ध; मध्यमश्रेणी के लोगों को किसानों के विरुद्ध लड़ाना तथा एक वर्ग को दूसरे के विरुद्ध क्षगड़े में फँसा देना इस की नीति है। दूसरे देशों के छोटे-छोटे राजनीतिक और आर्थिक मतभेदों को यह भयंकर पारस्परिक विरोधों की सूरत में पेश करता है। जनता की आशंका एवं सुरक्षा के अभाव की भावना को यह अपनी पूँजी समझता है और घृणा के व्यापार को अपना पेशा। पहले यह स्वयं ही जनता में गरीबी पैदा करता है और बढ़ाता है और फिर जनता की भूख का सहारा ले कर और अपने यहाँ समृद्धि के झूठे दावों का सब्ज बाग दिखाता रहता है।

यह है वह नये प्रकार का युद्ध, जिस की सोवियट रूस ने अमरीका और संसार के अन्य समस्त स्वतन्त्र देशों के विरुद्ध घोषणा कर रखी है। उस के इस चहुँ मुखी युद्ध का एक मात्र उद्देश्य है विश्व विजय। उस के इस उद्देश्य को विफल करने के लिये हम को ऐसे ही चहुँ मुखी शान्ति संघर्ष का सूत्रपात करना होगा। हमारे संघर्ष के भी वही चार मोर्चे हैं जो इस के हैं सैनिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनो-वैज्ञानिक।

शान्ति हो या युद्ध हमारा एक मात्र ध्येय शान्ति

हम जानते हैं, इस कठिन कार्य का अवलम्बन करने में विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिये हमें विभिन्न साधनों का प्रयोग करना होगा। रूस के शासक दुनिया में फूट डाल कर उस पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं ताकि उस को दासता के पंजे में जकड़ा जा सके। यह अनिवार्य रूप से दबाव, हिंसा और आतंक के साधनों का उपयोग करता है। इस के विपरीत हमारा उद्देश्य जनता में एकता, सहयोग और ऐसी सहायता का आविर्भाव करना है जिस से वह स्वाधीनता प्राप्त कर सके इस लिये हमें अनिवार्य रूप से स्वतन्त्र मत, स्वतन्त्र विचार-विमर्ष और स्वतंत्र निर्णय की जनतन्त्रात्मक प्रणाली ही को अपनाना है।

हम में से प्रत्येक को आने वाले समय में शान्ति के लिये संघर्ष करना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हम को अपना आचरण जनतन्त्रात्मक ही बनाये रहना होगा। हम को यह एह्तियात रखना होगा कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे पास जो कुछ निधि है उस को और जो हमारा अभीष्ट है उस को ही हम गवाँ बैठें हम में से प्रत्येक प्राणी का अपने आप को स्वतंत्रता की असंख्य सेना का सेनानी समझना और उसी प्रकार काम करते रहना होगा।

द्वितीय परिच्छेद

शान्ति विजय के लिये शान्ति संघर्ष की आवश्यकता

हम यह जानते हैं कि युद्ध के समय हम कठोर वास्तविकताओं की अवहेलना कर के या हाथ मलते रह कर या कंजूसी दिखा कर विजय प्राप्त नहीं कर सकते । इस के अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि प्रतिभाशाली और दूरदर्शितापूर्ण सर्वांगीण युद्ध कौशल के लिये हम को श्रेष्ठतम मस्तिष्क वालों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए, भले ही उस के लिये हमें अरबों रुपया खर्च करना पड़े । युद्ध में विजय प्राप्ति के लिये प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा तैयार की गयी रण-नीति को अमल में लाना और साथ ही विजय के लिये अपने चातुर्य और क्षमता का उत्सर्ग करना भी आवश्यक है । आप को याद होगा कि पिछले विश्व-युद्ध के समय हमारे योग्यतम नागरिकों में से कितने अपने देश की सेवा करने के लिये अपने-अपने काम छोड़ कर चल पड़े थे और कितनी उत्सुकता के साथ हमारी कांग्रेस ने युद्ध के लिये अरबों ही नहीं दसों अरबों रुपये की स्वीकृति दे दी थी । आप को यह भी स्मरण होगा कि किस प्रकार हम सब तोप, टैंक और हवाई जहाज़ बना ने में जुट गये थे, रेड क्रॉस की विभिन्न संस्थाओं में काम करने लगे थे और किस प्रकार तेजी के साथ युद्ध के लिये बांड बेच कर रुपया बटोरने में लग गये थे ।

शान्ति विजय के लिये शान्ति संघर्ष की आवश्यकता

युद्ध क्या है ? यह समझना कठिन नहीं। युद्ध निर्मम और चामत्कारिक ढंग की ऐसी मार काट है जिस का आप अनुभव कर सकते हैं, जिस को आप अपनी आँखों से देख सकते हैं और इस लिये उस में आप आसानी से सहयोग दे सकते हैं।

लेकिन शान्ति इतनी आसानी से समझ में आने वाली बात नहीं है। वह एक मूक, नीरस और निराकार प्रस्ताव है। इस शब्द में कोई सनसनी पूर्ण बात भी नहीं। किन्तु ऐसा होते हुए भी हम “शान्ति” शब्द को नाटकीय और तथ्य पूर्ण बना सकते हैं। पर केवल एक शर्त है कि हम इस के लिए प्रयत्न करें। इस बात को न समझने के कारण ही हम को अपने गृह युद्ध तथा प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इतने संकटों का सामना करना पड़ा है।

यदि अपने गृह युद्ध के समाप्त होने के बाद अमरीका के उत्तरी भाग लिंकन की इस नीति को स्वीकार कर लेते हैं “हमारे मन में विद्वेष किसी के लिये नहीं है, उदारता सब के लिये है” और दक्षिण के पुनर्निर्माण के काम में लग कर शान्ति की स्थापना कर पाते तो तुरन्त ही पुनः सद्भावना, सहानुभूति और समृद्धि का उदय हो सकता था। दक्षिण के राज्यों को यदि हम भोजन, पशु और हल दे कर तथा खेतों और बागों को हरा-भरा करने के लिये कुछ लाख डालर दे पाते तो समस्त राष्ट्र की समृद्धि में करोड़ों डालर की वृद्धि हो जाती। इस प्रकार की सहायता पा कर दक्षिण के लोग दस साल में ही अपने आप को इतना अच्छा जमा पा सकते जितना कि वे अन्यथा तीस साल में भी न कर सके। इस प्रकार बात की बात में अमरीका में पुनः सच्ची एकता की स्थापना हो सकती थी। लेकिन आर्थिक सहायता देने के स्थान में उत्तरी अमरीका ने अनेक थोथे गाल बजाने वाले लोगों को भेजा।

विश्व शान्ति के उपाय

इस का परिणाम यह हुआ कि पचास साल बाद तक भी दक्षिण में क्रोध और कटुता के प्रमाण मिलते रहे। उत्तरी अमरीका ने शान्ति के लिये प्रयत्न न कर के जिस अदूरदर्शिता का परिचय दिया उसी के बोये हुए बीज थे। मैं उत्तर के एक साधारण रंगरूट के नाते दक्षिण के एक कैम्प में रह चुका हूँ; मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उस क्रोध और कटुता का साक्षी होने का दावा करता हूँ।

पहले विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद भी हम शान्ति संघर्ष में विजय पा सकते थे बशर्ते कि हम उस के लिये जी जान से चेष्टा करते और दूरदर्शिता से काम लेते। स्टोक हौल्म से सीएटल तक और स्टोकहौल्म से समर कंद तक जहाँ भी आप जाते, जनता की ओर से सभी जगह यह आवाज़ सुनने को मिलती थी कि वह शान्ति चाहती है। किन्तु हम ने इस को ठोस रूप देने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया। इतना ही नहीं हम ने लीग आफ नेशन्स (League of Nations) को ठुकरा दिया। हम घूम फिर कर अपनी कूप मंडूकता के घेरे में फिर आ बैठे मानो यही हमारे जीवन का साधारण नियम था। उधर ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स अपने परम्परागत वैमनस्य में पड़ गये; और इस प्रकार अपनी युद्ध मशीन तैयार करने के लिये हिटलर का रास्ता साफ़ हो गया।

यह कहना सर्वथा उचित नहीं कि हमने पिछले महायुद्ध के समाप्त होने के पश्चात् शान्ति के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। विशेष रूप से पिछले तीन वर्षों में ट्रूमैन सिद्धांत (जिसके अनुसार टर्की और यूनान को सैनिक सहायता दी गयी), मार्शल योजना (जिसके अन्तर्गत युद्ध ध्वस्त योरोप को आर्थिक सहायता दी गयी), उत्तरी अटलांटिक संधि संघ (जिस के अनुसार उत्तरी अटलांटिक के प्रदेशों में सैनिक सहायता का

आयोजन किया गया), पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रम और संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रभावशाली संगठन बनाने की हमारी चेष्टा इस बात का प्रमाण है कि हम उत्तरोत्तर सतर्कता के साथ शान्ति की ओर अग्रसर होते रहे हैं। किन्तु अभी तक हम अपना अभीष्ट नहीं सिद्ध कर सके हैं। इस के दो मुख्य कारण हैं। पहला यह है कि हम में से अधिकांश लोग अभी तक यह नहीं समझ सके हैं कि रूस के शासक यह विश्वास किये बैठे हैं कि उन को एक दिन समस्त संसार पर शासन करना है। इस निर्मम सत्य को स्वीकार करने की हमारी अनिच्छा से उन्होंने बड़ी ही चतुराई के साथ अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा की है। जापान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् बहुत देर तक हम अपने कर्तव्य से विमुख होने को ही अपना कर्तव्य समझते रहे। हम ने द्रुत गति के साथ अपने सैनिकों को योरप से वापस बुला लिया—और ठीक यही बात रूस के शासक चाहते थे। इधर जब हम ‘टेलिविज़न सेट’ बनाने में लग गये तो रूस अपने आकाश को “रेडार” के पेचीदा जाल से ढकने में व्यस्त हो गया। हम जब यह समझ रहे थे कि “व्यापार यथा पूर्व” चलता रहना चाहिए तब रूस अतिक्रमण और साम्राज्य प्रसार के कार्य में जुटा हुआ था और इस के लिये वह पहिले ही से बड़ी सूझ-बूझ के साथ तैयारी करता रहा था। रूस की विशालकाय लाल सेना के आतंक से पोलैंड, हंगरी, रूमानिया और बल्गेरिया तेजी के साथ दासता की शृंखला में जकड़े जा चुके थे। चेकोस्लोवेकिया के कम्युनिस्ट-देशद्रोहियों ने आकस्मिक प्रहार कर के देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। अन्ततो गत्वा अपनी साम्राज्य स्थापना की प्रस्तावना के स्वरूप, रूस के शासकों ने मजदूर आन्दोलनों, विश्वविद्यालयों, पत्रकारों और खेती पर काम करने वालों

विश्व शान्ति के उपाय

मैं अपने सुगठित कार्यकर्ताओं को छोड़ कर उत्पादन को खराब करते और जनतन्त्रात्मक प्रणाली के प्रति अविश्वास पैदा करने के लिये महा मिथ्या-प्रचार आरम्भ कर दिया ताकि इन राष्ट्रों को अन्दर से खोखला किया जा सके। उधर चीन में माओ-त्से तुंग मानो रूस द्वारा दिये गये कम्पास और पैमाने की सहायता से सुदूर पूर्व देशों का दमन करने के नकशे बनाने में व्यस्त हो गया।

गत महायुद्ध के पश्चात् हम अच्छी तरह शान्ति की स्थापना न कर सके। हमारी इस विफलता का दूसरा कारण यह था कि हमने पूरी तरह से यह अनुभव नहीं किया था कि हम को उस के लिये कितने बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है। निस्सन्देह हमने संयुक्त राष्ट्र को संगठित करने का प्रथम कदम उठाया, दूसरे देशों के प्रति हमने बड़ी उदारता से काम लिया, संकट-ग्रस्त योरप निवासियों के लिये हमने कपड़े व खाने के करोड़ों पाउंड वज़न के पार्सल भेजे, योरप में हिटलर पर विजय पाने के ठीक एक वर्ष बाद हमारी सरकार ने ब्रिटेन को ३,७५०,०००,००० डालर का ऋण दिया; संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वा-वधान में बनाये गये सहायता और पुनर्वास विभाग (UNRRA) के अन्तर्गत २,५००,०००,००० डालर की सहायता दी। अन्तरिम सहा-यता योजना के अनुसार योरप को ५५५,०००,००० डालर दिये। चीन में करोड़ों डालर खर्च किये; पुनर्वास और विकास के लिये स्थापित किये गये अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की सहायता की। आर्थिक सहयोग संचालन समिति (Economic Cooperation Administration) की स्थापना के पहले ही हम केवल योरप की ही सहायता के लिये कुल मिलाकर १२,०००,०००,००० डालर खर्च कर चुके थे। दुर्भाग्यवश हमारी सहायता का पूर्ण प्रभाव न हो सका क्योंकि हमारे पास उस

शान्ति विजय के लिये शान्ति संघर्ष की आवश्यकता

लिये कोई सर्वांगीण योजना नहीं थी और हम इन रकमों को अल्प-कालीन संकट समाधान के रूप में खर्च करते रहे थे। रूस के शासकों ने जिस भराजकता का सूत्रपात किया था उस का निराकरण करने के लिये यह काफी न था।

तब किस तरह शान्ति स्थापना के लिये संघर्ष किया जाय इस विषय पर जो विचार प्रगट किये जा चुके हैं उन में भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। इन में दो उग्र दृष्टिकोण मुख्य हैं। अमरीका में अभी तक ऐसे लोग हैं, यद्यपि उन की संख्या दिन प्रति दिन घटती जा रही है, जो यह समझते हैं कि विचार-विमर्श द्वारा ही रूस के साथ हुए अपने मतभेद को दूर कर सकते हैं। “रूस के साथ भी व्यापार किया जा सकता है” इस शीर्षक से ये लोग अपने विचार प्रतिपादित करते रहते हैं। इस के विपरीत दूसरी ओर ऐसे लोग हैं, और उन की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है, जो यह विश्वास करते हैं कि जब एक न एक दिन रूस हमारे ऊपर आक्रमण करेगा ही तो हम स्वयं ही युद्ध का श्रीगणेश क्यों न कर दें। इस प्रकार का मत रखने वाले लोगों को युद्ध निवारक युद्ध (Preventive War) का प्रतिपादक माना जाता है।

इन दोनों ही दृष्टिकोणों की पूर्ण रूप से जाँच करना आवश्यक है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् कुछ दिन बाद तक मेरी यह धारणा रही थी कि यदि चेकोस्लोवेकिया जैसी आन्तरिक उथल-पुथल को रोक कर पश्चिमी योरोप को रूस के चंगुल से बचाया जा सके तो सम्भव है कि रूस के शासक विश्व विजय के स्वप्न छोड़ कर अपनी जनता की दशा सुधारने के काम में लग जायें। उस समय भी रूस आज की तरह अपनी समस्त राष्ट्रीय आय का ३५ प्रतिशत भाग अपने देश के बाहर या अपनी जनता के दमन के लिये रखी गयी सेना के ऊपर खर्च

विश्व शान्ति के उपाय

कर रहा था। यह स्पष्ट ही था कि यदि रूस इस प्रकार की युद्धोचित आर्थिक नीति को छोड़ कर जनता की दशा सुधारने में लग जाता तो अपनी सेनाओं पर खर्च होने वाली रकम के दो तिहाई भाग को अपनी लेनिनग्राड से व्लाडीवास्तक तक फैली पड़ी जनता के जीवन स्तर को ऊँचा करने में लगा सकता था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि साधारण समझ की बात यही है और संभव है कि रूस के शासक भी ऐसा ही विचार रखते हैं। संक्षेप में, मुझ को यह आशा थी कि रूस के शासक स्वयं शान्ति पूर्ण ढंग से रहेंगे और दूसरों को भी शान्तिपूर्ण ढंग से रहने देंगे।

इस विषय में, अन्य अमरीकन नागरिकों की भाँति, मैंने भी एक धोखा खाया। हमारे इस प्रकार धोखा खाने को हमारी सहिष्णुता का प्रमाण तो माना जा सकता है किन्तु वास्तविक राजनीति की सूझ-बूझ का नहीं। रूस के शासकों ने पूर्वी योरोप के अनेक देशों को अपनी आत्मरक्षा के “अन्तराल” (Buffer zone) स्थापित करने के बहाने हड़प लिया था। पर शीघ्र ही यह विदित हो गया कि अन्य क्षेत्रों की भाँति वहाँ भी उस की ये सब कार्यवाहियाँ उस के विश्वविजय के उद्देश्य को पूरा करने की राह में पड़ने वाले ठिकानों जैसी ही थीं।

रूस के शासकों का वास्तविक मन्तव्य क्या था, यह मार्शल योजना के अमल में आने के बहुत पहले ही विदित हो गया था। सन् १९४७ ई० के जुलाई मास में जनरल मार्शल ने हारवर्ड में अपने एक महत्वपूर्ण भाषण में योरोप के विभिन्न राष्ट्रों से यह कहा था कि वे अपने ध्वस्त आर्थिक जीवन को ठीक करने के लिये एक विशाल सहयोगात्मक प्रयत्न का श्री गणेश करें। उन्होंने ने आगे चल कर बताया था कि “यह साधा-

रण समझ की बात है कि अमरीका संसार को पुनः आर्थिक स्वास्थ्य प्राप्त कराने में जितनी भी, जो कुछ भी हो सकेगी मदद करेगा क्योंकि आर्थिक स्वास्थ्य के बिना राजनीतिक स्थिरता असम्भव है। और इस के बिना न ही शान्ति का आश्वासन प्राप्त हो सकता है। हमारी नीति का ध्येय किसी देश या सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य करना नहीं बल्कि भूख, गरीबी, निराशा और अराजकता ही को मिटाना है।” जनरल मार्शल अपने भाषण द्वारा यह प्रस्ताव करते समय विचार धारा सम्बन्धी कोई शर्त नहीं लगायी थी। हाँ, उन्होंने ने साधारण समझ की बात अवश्य कही थी कि “ऐसी सरकारों और राजनीतिक दलों या गुटों को जो मानव के दुःख को स्थिर बनाये रख कर राजनीतिक या अन्य किसी प्रकार का लाभ उठाना चाहते हैं अमरीका के विरोध का सामना करना पड़ेगा। मूल प्रस्ताव सच्चे मन और सद्भावना के साथ किया गया था इस का एक मात्र उद्देश्य एक ऐसी आधार शिला तैयार करना था जिस पर संसार के लोग समृद्धि, शान्ति और स्वाधीनता का एक सुरक्षित भवन निर्माण कर सकें।

जनरल मार्शल के इस प्रस्ताव का मानों विद्युत जैसा प्रभाव हुआ। कुछ घंटे बाद ही ब्रिटेन के विदेश मन्त्री श्री अर्नेस्ट बेविन (Ernest Bevin) ने फ्रान्स के विदेश मन्त्री की जार्ज बिदोल (George Bidault) को आमन्त्रित किया और दोनों ने मिल कर रूस के विदेश मन्त्री श्री मोलोटोफ (M. Molotov) से अनुरोध किया कि उन को शीघ्र ही इस प्रस्ताव पर विचार विमर्ष करने के लिये उन से मिलना चाहिये। १० दिन बाद उक्त तीनों विदेश मंत्री फ्रान्स के विदेश विभाग के कार्यालय की गोलमेज के चारों ओर बैठ कर परस्पर विचार-विनियम करने लगे। कुछ थोड़ी सी आशा पूर्ण घड़ियों के लिये तो ऐसा

लगा मानो समस्त योरप अब पारस्परिक सहयोग के आधार पर कोई महान कार्य करने वाला है। पर तब छठे दिन, श्री मोलोटफ बिना किसी स्पष्टीकरण और बिना किसी को नमस्कार किये ही हवाई जहाज में बैठ कर मास्को के लिये कूच कर गये। तब तुरंत बाद ही पौलैंड, हंगरी, बलगेरिया, रूमानिया, अल्बानिया, यूगोस्लाविया की सरकारों ने भी अपने आकाओं का आदेश पा कर समस्त योरप की इस प्रतिनिधि सभा में भाग लेने से इनकार कर दिया। रूस के शासकों ने बाद में चेकोस्लोवेकिया की सरकार को भी मार्शल योजना सम्बन्धी बात चीत में भाग न लेने के लिये “रज़ामन्द” कर लिया। मोलोटोफ का यह आकस्मिक प्रस्थान साधारण रूसी कटुता ही का प्रमाण नहीं था; वास्तव में इसके द्वारा ही उस ने अपनी “ठंडी लड़ाई” (Cold war) का सूत्रपात कर दिया। इस से रूस के कम्युनिस्ट नेताओं के एक और द्वाड़े की भी झलक मिली। रूस पर अपना-अपना आधिपत्य जमाये रखने के लिये उन्होंने ने न केवल संसार के स्वतन्त्र देशों के पुनरुत्थान के प्रयत्नों ही का विरोध करने का फैसला किया, वरन् उन का नाश करने की चेष्टा भी कर ली है। इस दोहरे मन्तव्य को पूरा करने के लिये छोड़ी गयी शक्तियों के हरावल के तौर पर सितम्बर सन् १९४७ ई० में रूस के तत्त्वावधान में कमिन्फार्म (Cominform) नामक संस्था की स्थापना की गयी। ‘अमरीका की साम्राज्य शाही’ की मार्शल योजना नामक “चाल” को विफल करना ही इस का उद्देश्य है ऐसी घोषणा की गयी। सोवियट रूस ने मार्शल योजना के तीन वर्षों में संसार के स्वतन्त्र देशों के पुनरुत्थान के लिये किये गये प्रयत्नों को विफल करने के लिये अपनी धोखे की नीति को और भी अधिक गहराई तक पहुँचा दिया है। इसने आपस में किये गये समझौते का निराकरण किया है, सन्धियाँ तोड़ी हैं और

और संसार के स्वतंत्र देशों के साथ बार-बार विश्वासघात किया है।

मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह सकता हूँ कि इस ने अमरीका के साथ किये गये निम्न बड़े-बड़े वायदों को भंग किया है:—

१—सन् १९४३ ई० में जब तेहरान में मित्र राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ था तो सोवियट रूस ने यह वायदा किया था कि पोलैंड तथा अन्य उन सब देशों को जो बाद में इस के मुँह का ग्रास बने यह अधिकार होगा कि वे अपनी मनचाही और जनता द्वारा चुनी गयी सरकारों ही के आधीन रहेंगे। इन सब देशों में एक भी ऐसा नहीं है जहाँ जनता को इस समय ऐसा अधिकार प्राप्त हो।

२—पौट्सडम के सम्मेलन में रूस ने यह वायदा किया था कि जर्मनी में सभी जनतन्त्रात्मक राजनीतिक दलों को प्रोत्साहन दिया जायगा। किन्तु वास्तव में सोवियट रूस द्वारा अधिकृत जर्मन प्रदेश में केवल कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा संचालित “सोशलिस्ट यूनिटी पार्टी” नामक संस्था ही को सोवियट रूस की सहायता मिल सकी है। अन्य राजनीतिक दलों का या तो दमन कर दिया गया है या उन की स्वाधीनता को नृशंसता पूर्वक कुचल दिया गया है।

३—पौट्सडम में सोवियट रूस ने यह वचन दिया था कि जापान द्वारा हथियार ढाल दिये जाने के बाद उस के समस्त सैनिकों को अपने-अपने घर वापस जाने की सुविधा मिलेगी “ताकि वे शान्तिपूर्ण और रचनात्मक जीवन यापन करने का अवसर प्राप्त कर सकें।” अब तक ३, ७६००० जापानी सैनिकों में से केवल ६५ हजार ही अपने घर लौट सके हैं।

४—७ जून सन् १९४५ ई० को संसार के “चार बड़े देशों”—अमरीका, ब्रिटेन, चीन और सोवियट रूस—ने यह वायदा किया था

विश्व शान्ति के उपाय

कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में उन में से कोई भी अपने विशेषाधिकार (Veto) का प्रयोग कर के उस की कार्यवाही में बाधा न डालेगा । रूस ने तब से आज तक केवल ४७ बार इस विशेषाधिकार का प्रयोग कर के परिषद् की कार्यवाही में विघ्न उत्पन्न किया है ।

५— वॉलिन की हवाई सहायता योजना (Oirlift) द्वारा अपनी नैतिक पराजय के पश्चात् सोवियट रूस ने २० जून सन् १९४९ ई० को पेरिस में यह स्वीकार किया कि जर्मनी पर जिन-जिन देशों का अधिकार है वे पश्चिमी और रूस अधिकृत प्रदेशों के बीच यातायात को नियमित रूप से चलने देंगे, किन्तु सन् १९५० ई० के आरम्भ से ही रूस के सेनानायक आये दिन दोनों प्रदेशों के बीच होने वाले यातायात में बाधाएँ डालते रहे हैं ।

६— सोवियट रूस ने यह भी वायदा किया था कि 'यथा समय' कोरिया स्वतन्त्र हो जायगा । किन्तु उस ने कभी भी संयुक्त राष्ट्र संघ के कमीशन को ३८ अक्षांश के उत्तर में स्थिति का अध्ययन करने तक नहीं जाने दिया ।

रूस ने कोरिया में जो कुछ किया है उस से यह स्पष्ट हो गया है कि योरप में जो उस की गतिविधि रही है उस का यह प्रतिरूप मात्र ही है । इसलिये उस के साथ किसी प्रकार का भी व्यापार या समझौता करना ही व्यर्थ ही प्रतीत होता है । स्टालिन जो कीमत माँगता है वह इतनी उँची है कि उस को कोई नहीं भुदा कर सकता । वह अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी चाहता है कि हम पश्चिमी योरप को फिर से अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित करना बंद कर दें । पूर्वी जर्मनी को पूर्ण रूप से सोवियट रूस के अधिकार में आ जाने दें और पश्चिमी जर्मनी के निरीक्षण में भी सोवियट रूस को सम्मिलित कर लें । दक्षिण

शान्ति विजय के लिये शान्ति संघर्ष की आवश्यकता

पूर्वी एशिया को उस के और कम्युनिस्ट चीन के हवाले कर दें और इस के लिये फारमोसा से सातवें नाविक बेड़े को तथा कोरिया और दक्षिणी महा सागर से अपनी सेनाओं को वापस बुला लें। स्टालिन का अभिप्राय यह है कि जापान का भविष्य निर्णय करने में उस की निश्चयात्मक आवाज रखी जाय और संयुक्त राष्ट्र संघ में राष्ट्रवादी चीन को जो स्थान मिला है वह माओ की सरकार को सौंप दिया जाय। सब से अधिक महत्त्व की बात यह है कि स्टालिन चाहता है कि अमरीका चारों ओर से कम्युनिज्म रूपी सागर से घिर जाये ताकि वहाँ भी कम्युनिज्म की लहरें स्वाधीनता की शिक्षा को समाप्त कर दें।

किसी दिन जब संसार के स्वतन्त्र देश स्टालिन और उस के इशारे पर चलने वाले लोगों को यह दिखा देंगे कि वे इतने सबल, इतने दृढ़ निश्चयी और इतने संगठित हैं कि वे उन को खोखला नहीं कर सकते तो हो सकता है उस से बात चीत कर के कोई परिणाम निकल आये। लेकिन अभी नहीं, और काफी देर तक नहीं।

अब युद्ध निवारक युद्ध की बात करने वालों की योजना पर विचार करना चाहिए। इस प्रकार का मत रखने वाले प्रकटतः बड़े तर्क से काम लेते हैं : “लाओ रूस पर अभी बम गिरा दें। कोरिया पर कम्युनिस्टों ने जो आक्रमण किया है उस से यह स्पष्ट ही हो गया है कि रूस के शासक अतिक्रमणात्मक और युद्धात्मक नीयत रखते हैं; तब हम ही क्यों सन्तों की तरह हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहें और रूसियों को दूसरे पर्लहारबर (Pearl Harbour) की पुनरावृत्ति करने का अवसर दें” ?

यह मेरे लिये समझना मुश्किल नहीं है कि अनेक आदमी इस प्रकार का दृष्टिकोण क्यों रखते हैं। मैं स्वयं शान्ति चाहता हूँ परन्तु

विश्व शान्ति के उपाय

किसी भी कीमत पर नहीं। मैं सैनेटर वेंडेनबर्ग (Senator Vandenbergh) से पूर्णतया सहमत हूँ। उन्होंने सन् १९४९ ई. में डार्टमथ कालिज में अपनी स्वाभाविक दूरदर्शिता पूर्ण शब्दों में कहा था :

“दाम दे कर अस्थायी शान्ति मोल लेना किस्तों द्वारा आत्मसमर्पण करने का दूसरा नाम है।”

जनरल मार्शल ने अपने सन् १९५० ई. के मेमोरियल डे के प्रबल अभिभाषण में इस दृष्टिकोण की पुष्टि की थी। उन्होंने कहा था कि “युद्ध करना कोई अच्छी बात नहीं है सिवाय ऐसी परिस्थिति के जिस में इस से विमुख होने पर इस से भी अधिक भयंकर अभिशाप का सामना करना पड़ सकता है। बलि दे कर अतिक्रमण को तुष्ट करने से युद्ध कहीं अधिक श्रेयस्कर होता है। अतिक्रमण से समझौता करना अतिक्रमण को ही आमन्त्रित करना है।” फिर भी मेरा यह विश्वास है कि अभी तक हम ऐसी किसी भयंकर दुविधा में नहीं फँसे कि मानव जाति को विश्वव्यापी युद्ध की ज्वाला में झोंकना ही आवश्यक हो जाये। मेरा विचार है कि कम्यूनिज्म को अणुबम (Atom bomb) से नष्ट करने की चेष्टा करना वास्तविक ध्येय को उसी प्रकार भूल जाने के समान है जिस प्रकार कोई आदमी चट्टान से ठोकर खा कर घर की चक्की तोड़ कर ही प्रतिशोध का शमन करने का यत्न करे। रूस के शासकों के विरुद्ध युद्ध निवारक युद्ध का सूत्रपात करना बुद्धि की नहीं आवेश की बात है। इस का अर्थ सूक्ष्म-बूझ को छोड़ना और घबड़ाहट में पड़ना है। युद्ध कर के युद्ध का निराकरण करना संभव नहीं।

स्वर्गीय वेंडेल विल्की Wendell willkie ने सन् १९४२ ई० की ग्रीष्म ऋतु में हवाई जहाज द्वारा सारे संसार की यात्रा की थी। (उन्होंने “एक विश्व” One world नामक पुस्तक भी लिखी थी)

शान्ति विजय के लिये शान्ति संघर्ष की आवश्यकता

उनकी यह धारणा थी कि संसार में अमरीका के प्रति सद्भावना का भंडार भरा पड़ा है। उन की राय में “सद्भावना का आधार अमरीका के प्रति संसार के लोगों की यह धारणा है कि अमरीका अति उदार और अतिक्रमण विरोधी राष्ट्र है।” उन का यह भी मत था कि हम दूसरे महायुद्ध के प्रारंभ में होने वाली विफलताओं के कारण कुछ ऐसे ‘मित्रों’ को अवश्य खो बैठे थे जो हमारी विफलताओं को अपनी विजय के कारण समझने लगे थे। किन्तु हमारी इस नैतिक नीति के प्रति कि जब तक हम पर कोई आक्रमण नहीं करेगा हम उस पर हाथ नहीं उठावेंगे, संसार की अधिकांश जनता के हृदय में प्रशंसा थी। श्री विल्की के विश्व भ्रमण के पश्चात् तो अमरीका विश्व युद्ध में विजय प्राप्त कर चुका है, संसार में पुनः व्यवस्था की स्थापना करा चुका है और दूसरे राष्ट्रों को अपने पावों पर खड़ा होने में सहायता दे चुका है। रूस के शासकों ने हमारे ऊपर साम्राज्यवादी और युद्धोन्मत्त होने का आरोप लगा कर वातावरण को दूषित कर रक्खा है। किन्तु संसार का एक बड़ा भाग अभी तक अमरीका को शान्ति और स्वाधीनता का प्रतीक और अतिक्रमण के विरुद्ध खड़ा होने वाला सर्वश्रेष्ठ मित्र मानता है ऐसी स्थिति में यदि अमरीका स्वयं अतिक्रमणात्मक कार्यवाही प्रारंभ कर दे चाहे ऐसा करने के पक्ष के कितने ही तात्कालिक उचित कारण क्यों न हों तो उस से उस की नैतिक स्थिति को धक्का लगेगा। उस का अर्थ यह होगा कि हम स्वीकार करते हैं कि हमारे पास बौद्धिक-शक्ति और इच्छा शक्ति का इतना अभाव है कि हम आज के युद्ध के चारों मोर्चों पर अर्थात् सैनिक क्षेत्र में संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों की सुरक्षा प्रबन्ध को अभेद्य बनाने में राजनीतिक, आर्थिक, और मनोवैज्ञानिक स्थिति को सुद्ध करने में असमर्थ रहे और बौखला कर स्वयं ही पहला प्रहार कर बैठे।

विश्व शान्ति के उपाय

युद्ध को शुरू करना चाहे उस के लिये कितनी ही बड़ी उरोजना क्यों न रही हो, स्वयं अतिक्रमण ही है। नैतिक दृष्टि से यदि अतिक्रमण अन्य राष्ट्रों के लिये पाप है तो निश्चय ही हमारे लिये भी पाप ही है। हम शान्ति और युद्ध के समय दो प्रकार के परस्पर विरोधी नैतिक माप-दण्डों से काम नहीं ले सकते। हमारे पास अपनी जो मूल्यवान निधि है उस में सब से बड़ा भाग हमारी नैतिकता ही है। मेरा यह भी विश्वास है कि नैतिक दृष्टि से हम अपने आत्मसम्मान को उसी समय तक बना सकेंगे जब तक कि जो कुछ भी हम करें उस की स्वीकृति हमारी अपनी आत्मा तथा मानव गांठ देती रहेगी। कौड़ी दो के लिये कल्पना कीजिये कि हमारे योजना बनाने वाले क्षेत्रों में युद्ध निवारक युद्ध की नीति को अपना लिया गया। उस के अनुसार किसी रात को आधे दर्जन अड्डों से D36 बम वाहक यान अँधेरे को चीरते हुए अणुबमों को ले कर शत्रु की ओर खाना दोगये। यह भी मान लीजिये कि उन का निर्दिष्ट स्थान मास्को, लेनिनग्राड या मेगनीटोगोर्स्क के लोहे और इस्पात के कारखाने और एटमग्राड का अणुक्षेत्र तथा अन्य औद्योगिक केन्द्र हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वे हमारे बमवर्षक सफलता पूर्वक रूस की युद्ध क्षमता का विनाश कर सकेंगे ? यह ऐसा प्रश्न है जिस का मैं या संभवतः कोई भी ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकता, विशेषतः इस लिये कि रूस की युद्ध सामग्री तैयार करने वाले बहुत से कल कारखाने ज़मीन के नीचे स्थित बताये जाते हैं। इस में भी कोई सन्देह नहीं कि रूस के पास रेडार, यान सूचक तथा यान विनाशक साधनों का इतना अच्छा प्रबन्ध है कि इस प्रकार का प्रयत्न करना एक खतरनाक जुए के समान ही होगा।

यदि यह मान भी लिया जाय कि रूस के बहुत से शहरों, नगरों

तथा उस के कुछ कल कारखानों को मिटाना सम्भव है, तो भी रूस अपनी १७५ डिवीजन वाली विशाल भूमि सेना से युद्ध तो करता ही रह सकेगा। उस की इस विशाल सेना का सामना करने के लिये पश्चिमी योरप में इस समय थोड़ी सी अमरीकन, ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी सेना है और फ्रांस, इटली, बेल्जियम, नारवे, डेनमार्क और हालैंड में उत्तरी एटलान्टिक राष्ट्रों की कुछ थोड़ी सी सैनिक डिवीजन हैं। यह सोवियट रूस की सेनाओं का सफलता पूर्वक सामना नहीं कर सकती; स्वतंत्र योरप का बहुत बड़ा भाग तब शीघ्र ही रूस की सेना द्वारा पद-दलित कर दिया जायगा। तब समस्त यूरोप को पुनः स्वतन्त्र करने की समस्या हमारे सामने आ खड़ी होगी। एक बार फिर हम अपने मित्रों व शत्रुओं पर बम गिराने को विवश होंगे—यदि हम आक्रान्ता को योरप से निकालना चाहेंगे तो फिर एक बार योरप में हमें अपनी सेना उतारनी होगी और नार्मंडी के तट पर एक बार फिर शोणित स्नान करना पड़ेगा। हम को विजय प्राप्त करने के लिये कितनी देर लगेगी यह कोई नहीं कह सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त में विजय हमारी ही होगी किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि वह घड़ी लाने के लिये हमको एक लम्बा कठोर, भयंकर युद्ध करना पड़ेगा—ऐसा युद्ध करना पड़ेगा जो युद्ध निवारक युद्ध करने का स्वप्न देखने वालों की आशाओं पर बिल्कुल पानी फेर चुका होगा।

बम गिराने में जल्दबाजी करने से भयंकर दिन देखना पड़ेगा यह निश्चित है।

इसके अतिरिक्त मेरा विचार है कि अमरीका में युद्ध निवारक युद्ध का प्रचार करना बाहरी दुनिया में अमरीका के हितों को अकथनीय हानि पहुँचाना है।

विश्व शान्ति के उपाय

पश्चिमी योरप के देश हमारे साथ पूर्ण रूप से इस लिये सहयोग करते हैं कि हम सोवियट रूस को अतिक्रमणात्मक युद्ध करने से रोक रहे हैं। किन्तु यदि हम रूस के विरुद्ध कितना ही न्यायोचित किन्तु फिर भी अतिक्रमणात्मक युद्ध आरम्भ करें तो वे हमारे साथ सहयोग न कर सकेंगे। इस प्रकार की बातचीत मात्र से ही योरप की समस्त जनता तिलमिला उठती है। वह युद्ध करते-करते थक गयी है। उस की एक ही पीढ़ी को दो बार अपनी ही भूमि पर भयंकर विध्वंस-कारी युद्धों की यातनाएँ भोगनी पड़ी हैं—ऐसे युद्धों की यातनाएँ जिन में किसानों के कथनानुसार घास तक भी रक्त-रंजित हो गयी थी। अभी-अभी तो वे युद्ध के विनाश से ऊपर उठ कर पुनः निर्माण कार्य में लगे हैं और पुनः आशा रख ने लगे हैं। इस बात की आशंका से कि उन के देशों को एक बार फिर युद्ध क्षेत्रों में परिवर्तित होना पड़ेगा उन को ऐसी व्यथा होती है जैसे किसी को दिन में भयंकर स्वप्न देख ने में हो जाया करती है। यदि योरप के इन राष्ट्रों को कभी यह सन्देह हो गया कि अमरीका स्वयं अतिक्रमणात्मक युद्ध कर ने पर तुला है तो सोवियट रूस के संभाव्य अतिक्रमण के विरुद्ध उन्होंने ने अब तक मिल कर जो प्रयत्न किया है वह भी छिन्न-भिन्न हो जायगा।

एक अंतिम बात और है जिस को ध्यान में रखना चाहिए। इस देश में रूस पर बम गिराने की बात कर के सोवियट रूस को वे ही नारे प्रदान करते हैं जिन की उस को आवश्यकता है ताकि वह यह सिद्ध कर सके कि युद्ध करने पर हम ही तुले हुए हैं।

न्यूयार्क टाइम्स के सैनिक विदलेशक श्री हैन्सन वाल्डविन ने अपने एक लेख में इस विषय में जो कुछ लिखा था उस से मैं सहमत हूँ। उन्होंने लिखा था कि युद्ध को रोकने के लिये युद्ध करने का सिद्धान्त

“राजनैतिक दिवालिपन और नैतिक नैराश्य का ऐसा मार्ग है जो सैनिक दृष्टि से न केवल व्यर्थ ही होगा वरन् जिस का अर्थ उन समस्त मान्यताओं को भी खो देना होगा जिन को बचाने के लिए अमरीका इतना प्रयत्न कर रहा है।”

लेकिन हम यदि स्टालिन के साथ समझौता भी नहीं कर सकते और उस के देश पर बम भी गिराना नहीं चाहते तो क्या करें ? इस प्रश्न के उत्तर में मैं कहूँगा कि मेरा कार्यक्रम ऐसा निर्णयात्मक है जो कम्युनिज्म को रोकने मात्र से नहीं आगे पहुँचता है। इस कार्यक्रम के अनुसार रूस की चालों को समझ कर उन को विफल करने से भी अधिक महत्त्व का इस का वह अंग है जिस में उन समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्थाओं को मिटाने का आयोजन है जिन पर कम्युनिज्म पन-पता है। इस दिशा में मार्शल योजना हमारे लिये पथ-प्रदर्शक का काम करती है, और अमरीका की सुदृढ़ रचनात्मक और व्यापक विदेश नीति के लिए एक परीक्षण क्षेत्र सिद्ध हुई है। रूस की वह नीति जिस का अनुसरण कर के वह विभिन्न देशों को अंदर ही अंदर से खोखला कर देना चाहता था विफल हो गयी है। मार्क्स के द्वंद्वात्मक दर्शन के विरोध में मार्शल योजना के अन्तर्गत बनने वाले बिजली पैदा करने वाले कल कारखाने, बे घरबार लोगों को दिये जाने वाले घर, ट्रैक्टर और अच्छी फसल पैदा करने के लिये दिये गये बीज भी हैं। मार्शल योजना के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली दाल-रोटी रूस के मिथ्या प्रचार के कथित मिथान्न की तथ्य हीनता को सिद्ध कर चुकी है।

यह स्पष्ट ही है कि भाज की दुनिया में ऐसे किसी कार्यक्रम को पूरा करने के लिये हमारे पास इतनी सैनिक शक्ति होनी चाहिए कि हम रूसी लाल सेना को आगे बढ़ने से रोके रह सकें ताकि इस प्रकार

विश्व शान्ति के उपाय

मिलने वाले समय के हम राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में वे सब कार्यवाही करते रहें जिन से रूस के संतुलन बिगड़ने की संभावना है ।

मेरा यह विश्वास है कि इस कार्यक्रम के द्वारा तीसरे महायुद्ध के रोकने की काफ़ी संभावना है । और साथ ही स्वतंत्र देशों की स्वाधीनता एवं शान्ति के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना भी सम्भव है । जब मैं शान्ति की बात कहता हूँ तो मेरा मतलब ऐसी शान्ति से है जिस में न केवल युद्ध का अभाव ही हो वरन् जिस में स्वाधीनता भी हो । और स्वाधीनता का अर्थ दासता के अभाव ही नहीं है मेरी राय में इस का यह अर्थ है कि समस्त मानव प्राणी जीवन, स्वाधीनता एवं सुखार्जन का अपने सजीव विश्वास के रूप में प्रतिष्ठान कर सकें ।

तृतीय परिच्छेद

अमरीका : स्वतंत्र विश्व का निष्काम नेता

मेरा यह पक्का विश्वास है कि अमरीका विश्व नेतृत्व के दायित्व को स्वीकार कर ले तो हम शान्ति संवर्धन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। मेरी समस्त योजना इस विश्वास पर आधारित है कि केवल हमारे ही पास ऐसे भौतिक साधन और औद्योगिक कौशल हैं, केवल हमारी ही ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति है और हमारे ही पास संवर्धन करने की ऐसी क्षमता है जिसके द्वारा शान्ति संवर्धन को सफल बनाया जा सकता है। हम संसार में नेतृत्व की कामना नहीं रखते थे, पर फिर भी अब हमारा जो नया कर्तव्य हो गया है उसको हमें भली प्रकार निवाहना चाहिये। यदि हम ऐसा न करेंगे तो हमको उस ऐसी अराजकता को स्वीकार कर लेना होगा जिसका अनिवार्य परिणाम घोर तानाशाही का अनन्त अंधकार ही हो सकता है।

किन्तु संसार के स्वतंत्र देशों का नेतृत्व करने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम अपनी अपेक्षतया अधिक शक्ति के आधार पर इस के समस्त या अपने भाग से अधिक भार को अकेले ही वहन करें। ऐसे विषयों में कानूनी वारीकियों में पड़ना हमारा स्वभाव नहीं है। हम यह जानते हैं कि हमारे अपने उद्बुद्ध स्वार्थ के लिये ही यह आवश्यक

विश्व शान्ति के उपाय

है कि हम अपने पक्ष के अन्य राष्ट्रों की रक्षा शक्ति को सुदृढ़ करें। हम उन की सेना द्वारा सहायता कर सकते हैं; उनको सामान दे सकते हैं तथा अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान कर सकते हैं। किन्तु हमारे नेतृत्व की सच्ची परख इस बात पर अवलम्बित है कि हम अन्य राष्ट्रों को अपने-अपने हिस्से के भार को बलपूर्ण ढंग एवं आत्माभिमान के साथ स्वयं वहन करने के लिये प्रेरित कर सकने की कहाँ तक योग्यता रखते हैं।

मैं स्वयं देर तक इस यथार्थता को स्वीकार नहीं कर सका था कि हमारे संकट का दूसरे राष्ट्रों के संकट से अविच्छिन्न संबंध है। मेरे पिता का जन्म स्थान 'शिकागो ट्रिव्यून' नामक पत्र के डीयर बोन तथा मैडीसिन स्थित कार्यालय के समीप ही था। मैं स्वयं शिकागो के एक भाग में पैदा हुआ और पला था—शिकागो एटलांटिक महासागर से और प्रशान्त महासागर से सैकड़ों मील और योरप और एशिया से सहस्रों मील दूर है। स्वभाव और शिक्षा से मैं एकांतवादी (Isolationist) ही था। किन्तु गत दो विश्वयुद्धों में से पहले ही ने मुझ को यह विश्वास करा दिया था कि चाहे ऐसा करना कितना ही प्रिय क्यों न लगता हो, संसार से विमुख हो कर नहीं रह सकते। सन् १९२० और ३० ई० के बीच के दिनों में जब कि हम लोग दस-दस लाख डालर कमाने की बातें किया करते थे और सन् १९३० ई० के बाद जब सर्वत्र आर्थिक गिरावट छा गयी थी मैं संसार के उतार-चढ़ाव को किसी भौगोलिक दृष्टि से नहीं देखा करता था। मैंने कम्युनिज्म फासिज्म, और नाजिज्म को नवीन प्रकार की तानाशाहियों को भयंकर विभीषिकाओं का रूप धारण करते देख चुका था। यह सब कुछ देखने के बाद मैं यह अनुभव करने लगा था कि संसार की इन नवीन शक्तियों

से बचने का कोई उपाय नहीं है। किन्तु जब मैंने सन् १९३८ ई० में शिकागो यूनिवर्सिटी में श्री वाल्टर लिपमैन के कई सूक्ष्मदृष्टि पूर्ण श्रृंखला बद्ध भाषण सुने तो संसार की इस नयी पारस्परिक आश्रयता के प्रति मेरे विचार और भी स्पष्ट और सूक्ष्म हो गये। श्री लिपमैन का कहना था कि “इस युग में हम एक ऐसी नयी शक्ति का उदय होता हुआ देखेंगे जो रोम और ब्रिटेन के उत्तराधिकारी के रूप में शान्ति प्रदान करेगी और उसका यह ध्येय होगा कि वह अपने प्रभु-प्रदत्त कर्तव्य को ग्रहण करने के लिये अपने आप को तैयार करे। निस्संदेह मेरा संकेत अमरीका की ही ओर है।” जब मैं श्री लिपमैन के उन शब्दों को स्मरण करता हूँ तो कभी-कभी मुझे को आश्चर्य होने लगता है कि क्या उन को यह भी मालूम था कि कितनी जल्दी हम को उस कर्तव्य को पूरा करने का आवाहन मिलेगा। मुझे यह भी याद है कि उन्होंने इस के साथ ही साथ एक बड़ा ही सुन्दर परामर्श भी दिया था। उन्होंने कहा था कि “जान बूझ कर, और आखें खोल कर अपने कर्तव्य को पूरा करना दिशा विहीन हो लुढ़कते रहने की अपेक्षा कहीं अधिक श्रयस्कर है। अमरीका वासी आज इस बात को कितना ही नापसंद क्यों न करें किन्तु वे इस सत्य से इन्कार नहीं कर सकते। उनकी महानता, उन की स्थिति और संसार के अन्य राष्ट्रों में जो उन की शक्ति है, उस में यह सन्निहित है कि वे अपने इस दैवी ध्येय को स्वीकार कर लें। उन को यह गहन भार तथा भारी दायित्व स्वीकार करना ही पड़ेगा।”

वास्तव में सन् १९३८ ई. में हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में साधारण सा दायित्व ग्रहण करने के लिये भी तैयार न थे। इतना ही नहीं उस समय हम आकाश कुसुम देखने में रत थे। हम न जाने कैसे भरोसा

विश्व शान्ति के उपाय

कर बैठे थे कि तटस्थ रहने के लिये हमने जो विभिन्न कानून बनाये हैं वे ही हम को आने वाले युद्ध से बचाये रह सकेंगे। दूसरा विश्व युद्ध आया; बड़ी तड़क-भड़क के साथ सन् १९४० ई. के निर्वाचन में प्रेजी-डेन्टी के दोनों उम्मीदवारों ने यह घोषणा की कि वे देश के युवकों को देश के बाहर युद्ध में शामिल होने के लिये नहीं जाने देंगे। लेकिन केवल चार वर्ष पश्चात् ही हमने देखा कि लगभग एक दर्जन मोरचों पर हमारे वीर युवक नाजिमां, फासिस्टों और जायानिमां से कोई एक-एक इंच भूमि के लिये कट मर रहे हैं।

अधिकांश लोगों का यह मत है कि गत दो विश्व युद्धों में भाग लेना ही इस बात का अप्रत्यक्ष प्रमाण है कि यदि संसार में अराजकता और विनाश की लहरें उठें तो अमरीका उन से बचा नहीं रह सकता। इस मत की पुष्टि करने के लिये कुछ अप्रत्यक्ष प्रमाण तो बहुत ही सबल हैं। आप तनिक अनुमान कीजिये कि आप किसी दीवार पर बैठे हुए हैं, साँय-साँय करती हुई एक गोली आप के पास से निकल गयी। आप इतने ही अनुभव से संभवतः कोई भी परिणाम नहीं निकाल सकते; किन्तु एक बार फिर गोली उसी मार्ग से निकल जाये तो आप को अवश्य ही यह आशंका करनी चाहिए कि स्थिति शोचनीय है; किन्तु यदि तीसरी बार गोली आप के टोप में से होकर गुजर जाय तो आप को निश्चय ही यह परिणाम निकालना चाहिए कि कोई आप को आखेट बनाने पर तुला हुआ है।

निस्संदेह कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो दो पिछले विश्व युद्धों और अन्य अप्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद यह माने बैठे हुए हैं कि हम योरप और एशिया को उनको अपने-अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दें तो कोई विशेष हानि नहीं होगी और हम यथा पूर्व अपने द्वीप पर कारोबार चलाते

रह सकते हैं। उन का यह आग्रह है कि हम अपनी एक-एक पाई जोड़ कर घर पर ही रखें और यदि अपनी रक्षा के लिये दीवार खड़ी भी करें तो केवल अपनी ही सीमा पर। मुझे तो संदेह है कि इस प्रकार के सशस्त्र एकान्तवास से सोवियट रूस द्वारा पश्चिमी योरोप के पद दलित होने के बाद स्वयं हमारी रक्षा भी हो सकती है। मेरे विचार में इस से बड़ी भयंकर भूल और कोई नहीं हो सकती कि हम अमरीका को एक किला समझ बैठें शेष संसार को नष्ट हो जाने दें। जा लोग अटलांटिक और प्रशान्त महासागर को अपने लिये पर्याप्त रक्षात्मक खाइयाँ समझते हैं उन के भ्रम को दूर करने के लिये हमको केवल उन सामरिक सामग्रियों पर दृष्टिपात करना भर पर्याप्त होगा जो हमको समुद्र पार से ही मैगानी पड़ती हैं। उदाहरण के लिये इस्पात बनाने के लिये हमको जितना मैगनीज चाहिए उसका ६० प्रतिशत, और अल्मोनियम के लिये जितना वाकसाइट चाहिए उसका अधिकांश भाग, और जितनी टीन और रबड़ चाहिए वह सब हमको समुद्र पार से ही मिलते हैं। उन में तो उन अनेक वस्तुओं में से कुछ एक ही हैं जिनकी हमारे औद्योगिक जीवन के लिये आवश्यकता होती है। यदि थोड़ी सी देर के लिये तर्क के लिये हम यह मान भी लें कि हम इस प्रकार की एकान्तवादी रक्षा 'क्ति तैयार कर सकते हैं तब हम को यह भी मानना पड़ेगा कि इन रक्षा पंक्तियों को केवल कुछ महीनों या वर्षों ही नहीं बल्कि दसियों वर्षों तक हम को बनाये भी रखना होगा। अब जब कि पश्चिमी योरोप हमारे साथ है हमारा रक्षा सम्बन्धी व्यय अति भीषण है; यदि कहीं पश्चिमी योरोप हमारा साथ छोड़ दे तो स्पष्ट ही है कि हमारी यह व्यय की मात्रा इतनी अधिक हो जायगी कि हम उस के भार से लड़-खड़ा तक सकते हैं। उस दशा में आज कल की डालर की कीमत के

विश्व शान्ति के उपाय

हिसाब से हमारा रक्षा व्यय सम्भवतः प्रति वर्ष १२५, ०००, ०००, ००० डालर होगा जब कि इस समय यह व्यय और इस में हमारे मित्रों के लिये किया गया व्यय भी सम्मिलित है—२५, ०००, ०००, ००० डालर से अधिक नहीं है। सब से भयंकर बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों हर दस वर्ष के बाद रूस अधिकृत योरप तथा एशिया की सैनिक शक्ति बढ़ती जायगी त्यों-त्यों तो हमारा यह व्यय भार भी बढ़ता जायगा। अनिवार्यतः इस प्रकार के अपरिचित व्यय का प्रभाव यह होगा कि हमारा जीवन मापदण्ड गिर जायगा और हम साधुओं की भाँति जीवन यापन करने को विवश हो जायेंगे। इस से भी भयंकर बात यह है कि रक्षा पर इस प्रकार व्यय करते रहने के लिये हम को उन सब नियंत्रणों को स्वीकार करना पड़ेगा जिन को हम तानाशाही शासन प्रणाली ही का एक आवश्यक अंग मानते हैं—और मैं फिर दोहरा दूँ ये नियंत्रण कुछ महीनों या वर्षों के लिये नहीं बल्कि दसियों वर्षों तक चलते रहेंगे।

इस रास्ते में एक भयंकर गर्त भी है। इस प्रकार की आत्म निर्भरता पूर्ण सुरक्षा का प्रयत्न करने से हम समस्त स्वाधीनताओं को ही खो बैठेंगे जिन की रक्षा करने के लिये हम इतने उत्सुक हैं। संकट काल में स्वतन्त्र आर्थिक जीवन पर अल्प समय के लिये नियन्त्रण स्वीकार करना एक बात है चिर काल के लिये अपनी आर्थिक स्वाधीनता को खो बैठना दूसरी ही बात है। वे लोग भी जो मुझसे अधिक आशावादी हैं (और मैं स्वयं आशावादी हूँ) यह विश्वास नहीं कर सकते कि एक विस्तृत स्थापित नौकरशाही चिर काल तक हमारे व्यक्तिगत और आर्थिक जीवन पर नियंत्रण रखने के बाद अपने अधिकारों को संकट व्यतीत होने के बाद आसानी से छोड़ देगी। वास्तव में इस प्रकार जनता

के वोटों पर भी इसका अधिकार हो सकता है। यदि ऐसा हो गया तो यह नौकर शाही ऐसी चिरंजीवता प्राप्त कर लेगी कि इसका अन्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगा।

इसी प्रकार के संकटों से सावधान करते हुए हार्टफोर्ड के “कूरंट” (Courant) नामक पत्र ने अपने २१ दिसम्बर के अग्रलेख में लिखा था:—

“राष्ट्र को इस नीति को अपनाने से पहले इस पर आद्योपांत विचार करना होगा। इस नीति का अनुसरण करने से यह परिणाम हो सकता है कि अमरीका एक ऐसा कैम्प बन जाय जिसमें रहने वाले सशस्त्र, सशंक और स्वाधीनता शून्य प्राणी हों। भविष्य में आने वाले हमारे १००,०००,०००,००० डालर वाले वज्रट इस प्रकार की नीति ग्रहण करने से होने वाले व्यय के समक्ष ऐसे ही दिखायी देंगे जैसे किसी स्त्री को अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए मिली छोटी सी रकम। ऐसी अवस्था में हम संसार से अलग जा पड़ेंगे। आज सर्वत्र जो आशंका दिखायी देती है वह जीवन का साधारण नियम बन जायगी। अति कठोर किन्तु अस्थायी नियंत्रणों के स्थान पर, (जिनकी आज हमको आवश्यकता है) हमारे ऊपर स्थायी नियंत्रण स्थापित हो जायेंगे। हम अकेले पड़ जायेंगे और किसी भी ऐसे कम्युनिस्ट की जिसको बन्दूक चलाने को शौक हो या जो हमारे ऊपर पहला अणुबम गिराने की सोच में दया के भिखारी बन जायेंगे”।

हम में से प्रायः सभी लोग अमरीका की विश्व-नेतृत्व की नयी स्थिति को स्वीकार करते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इससे हम यह भी समझने लगे हैं कि यह नेतृत्व किस प्रकार अपने आप को ऐसे विचारों तथा कार्यों में व्यक्त करे जिनमें हमारे राष्ट्रीय निश्चय तथा

विश्व शान्ति के उपाय

चरित्र का प्रतिबिम्ब हो सके। यदि हम प्रभावशाली ढंग से नेतृत्व करना चाहते हैं तो हमका संसार के समस्त स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ मिलकर सामेदारी तथा एकता के आधार पर काम करना होगा। सहयोग और एकता का आधार दूसरों के विचारों और हितों के प्रति हमारा सम्मान ही होना चाहिए। यह साधारण मनोविज्ञान की बात है और राष्ट्रों के अधिपतियों, साधारण नागरिकों पर समान रूप ही से लागू होता है। उन लोगों में से जो उन अन्य राष्ट्रों के कर्णधार हैं जो हमारे साथ मिल कर काम करने को तत्पर हैं, कोई भी हमारी जवान से “आज्ञा” जैसा शब्द सुन कर रोष में आ सकता है। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था (ECA) का शासक रहने की हैसियत से मैं वयं इसका अनुभव कर चुका हूँ।

सन् १९५० ई० के अक्टूबर मास में अपने पद से त्याग पत्र देने के तुरंत बाद ही मैंने आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की ओर से योरोपीय देशों के पुनर्निर्माण कार्य का निरीक्षण करने के लिए एक भ्रमण किया था। तब मैंने देखा था कि जहाँ हमने एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रख कर प्रयत्न किया है, वहाँ अनिवार्यतः सर्वश्रेष्ठ परिणाम रहा है। टर्की इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

पहले विश्व युद्ध में टर्की हमारा शत्रु रहा था। दूसरे में वह तटस्थ रहा और अब हमारे परम विश्वसनीय सहयोगियों में से है। टर्की और अमरीका की मित्रता का आधार, निःसन्देह, दोनों के पारस्परिक हित सम्पादित करते रहने की इच्छा ही है। किन्तु यह मैत्री इधर और भी अधिक दृढ़ हो गयी है क्योंकि दोनों देशों में एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना है। टर्की के ‘ह्वाइट हाउस’ में मैंने टर्की के प्रेजी-डेन्ट जलाल बयार से बात चीत की थी। उन्होंने मुझसे कहा था कि

टर्की स्वतंत्र देशों की रक्षा में भाग लेने के लिए कितना इच्छुक है, और वास्तव में टर्की पहिले ही से ऐसा कर भी रहा है। इसकी जन-संख्या दो करोड़ है, फिर भी इसकी सेना की संख्या २२ या २५ डिवीजन है; और समस्त देश में अनिवार्य सैनिक शिक्षा का नियम प्रचलित है। इसके अतिरिक्त क्यों कि रूस की ओर टर्की की सीमा मिलती है, रूस दरेदानियाल के जलडमरूमध्य पर अधिकार करना चाहता है। टर्की उसका निरंतर सामना करता रहा है। यदि हम यह कहें कि हम उसको मार्शल योजना की सहायता उसी समय देंगे जब कि वह हमारे आदेशानुसार एक दर्जन डिवीजन सेना किसी नियत समय और स्थान पर उतार दे (जैसे कि घरों में बैठे गाल बजाने वाले कुछ लोग कभी-कभी कह दिया करते हैं) तो टर्की के स्वाभिमानी एवं बुद्धिमान नेता की प्रतिक्रिया क्या होगी यह सोच कर मैं सहम उठता हूँ। किसी बात को आग्रह या दृढ़ता के साथ कहना एक बात है और किसी पर ताना शाही हुकुम चलाना बिल्कुल दूसरी। सच्चे नेतृत्व का वास्तविक गुण यह है कि उसमें शक्ति का उपयोग दूसरों के साथ मिश्र कर किया जाता है उनके ऊपर नहीं।

ग्रेट ब्रिटेन के विदेश मंत्री अर्नेस्ट बेविन ने एक बार मेरे साथ नेतृत्व सम्बन्धी समस्याओं पर विचार विमर्श किया था। १९ वीं शताब्दी में स्पेन के बड़े नाविक बेड़े को पराजित करने के समय से पहले विश्व युद्ध तक ग्रेट ब्रिटेन संसार का सब से शक्तिशाली राष्ट्र रह चुका था। बेविन समाजवादी होने के बावजूद ब्रिटिश साम्राज्य की ऐतिहासिक सफलताओं पर गर्व करते थे। अपनी बातचीत में उन्होंने उन कारणों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जिनके बल पर ब्रिटेन इतनी देर तक संसार का नेता रह चुका था। उन्होंने कहा, कि “कुछ व्यक्तियों का

विश्व शान्ति के उपाय

विश्वास है कि हमारी शक्ति का आधार हमारी नाविक सेना के अधिनायकों के तमगे तथा ९० हजार नाविकों के फीते थे । किन्तु मैं कहता हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति का सबसे बड़ा कारण संसार में ब्रिटिश न्यायप्रियता, ब्रिटिश संस्कृति और ब्रिटिश न्यायालयों की निष्पक्षता की निर्मल ख्याति ही थी ।”

ब्रिटेन एक महान नेता था । उसने अपने नेतृत्व का अधिकार स्वयं उपाजित किया था । नेतृत्व को किस प्रकार सफल बनाया जाय, इस विषय में ब्रिटेन का सबसे बड़ा योग यह रहा था कि उसने एक ऐसा जनसंघ स्थापित किया जो पहले साम्राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और बाद में कामन-वेल्थ के रूप में परिणत हो गया । निःसन्देह अमरीकावासियों को “साम्राज्य” शब्द अच्छा नहीं लगता फिर भी हमें आशा है कि निश्चय ही भविष्य में एक ऐसी शासन प्रणाली का उदय होगा जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के लोग स्वतंत्र रूप से मिल जुल कर एक दूसरे के भले के लिए काम करेंगे । जिस प्रकार ब्रिटेन को कामनवेल्थ में अपने अन्य सहयोगियों में प्रथम स्थान प्राप्त है उसी प्रकार अमरीका को संसार के स्वतंत्र देशों में प्रथम स्थान प्राप्त करने का अवसर मिला है ।

यही कारण है कि हम को उन समस्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को सबल बनाना चाहिए जो संसार के स्वतंत्र देशों की शक्ति संरक्षण कार्य कर रही हैं । निःसंदेह अन्य राष्ट्रों के साथ एकता स्थापित करने के लिए किए जाने वाले हमारे प्रयत्नों का सर्वश्रेष्ठ माध्यम संयुक्त राष्ट्र संघ ही है । हम को बिना किसी झिझक के उस का समर्थन करना चाहिए । इस के अतिरिक्त हम को कौंसिल आफ़ योरप O.E.E.C. (जो योरप के विभिन्न देशों के आर्थिक जीवन के एकीकरण का प्रयत्न

कर रहा है), NATO (जो उत्तरी अमरीका और योरप में सैनिक सहयोग प्रस्थापित करने का साधन है) तथा सर्व अमरीकी संघ (Pan American Union) जैसी प्रादेशिक संस्थाओं का भी समर्थन करना चाहिए। विभिन्न राष्ट्रों में व्यापार बढ़ाने के लिए स्थापित किये गये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संघ (I.T.O.) की अभी तक हमारी कांग्रेस ने पुष्टि नहीं की है। मेरी राय में हम को उस में सम्मिलित होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संघ में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन से रूढ़िवाद को प्रोत्साहन मिलने का भय है और जो मुझ को पसन्द नहीं है, फिर भी मैं समझता हूँ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए ऐसा संगठन होना जिस का घोषणापत्र अधूरा है, कोई भी संगठन न होने से कहीं अधिक अच्छा है। उस के सदस्य होने के नाते हम कम से कम अपने विचारों को स्वीकार कराने का प्रयत्न तो करते रह सकते हैं।

स्वाधीन राष्ट्रों में एकता स्थापित कराने का दायित्व किसी सरकार या उस की प्रतिनिधि संस्था पर ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इस में व्यक्तिगत रूप से योग दे सकता है और उस को योग देना चाहिए ताकि मिथ्या प्रचार का अन्त किया जा सके। स्वतंत्र राष्ट्रों को एक दूसरे के प्रति इतना विश्वास होना चाहिए, कि जब वे एक दूसरे के विषय में सब से अच्छी या सब से खराब बात सुनें, तो यही मानें कि सम्भवतः सब से अच्छी बात ही सच है।

अक्सर हम को खयाल भी नहीं होता कि कितनी बार स्वतंत्र राष्ट्र एक दूसरे की निन्दा तथा तिरस्कार करते रहते हैं। जब हम ऐसा करते हैं तो सोवियट रूस को इन राष्ट्रों को एक दूसरे से भिड़ाने में सहायता मिलती है। संसार के स्वतन्त्र देशों में भेद-भाव उत्पन्न करने के लिए कम्युनिष्ट प्रचारक नित्य प्रति अफवाहें फैलाते रहते हैं। इस का अभी

विश्व शान्ति के उपाय

हाल ही का उदाहरण लीजिए । पिछले दिनों अमरीका में यह भ्रम फैलाया गया कि ब्रिटेन अपने हवाई जहाज के इंजिन बनाने वाले कारखानों में बड़ी संख्या में रूस के लिए 'जेट' हवाई जहाज तैयार करने में लगा हुआ है । फ्रान्स में यह प्रचार किया गया कि अमरीका चुपके-चुपके लाखों जर्मनों को हथियार दे रहा है, दूसरी ओर जर्मनी में यह अफवाह फैलायी गयी कि फ्रान्स इस बात पर तुला हुआ है कि रूस तथा अन्य जर्मन औद्योगिक केन्द्रों को तुड़वा दिया जाए ताकि आर्थिक दृष्टि से जर्मनी कबरिस्तान जैसा हो जाय ।

वैजमिन फू कलिन जो कुछ कह गये हैं आज की स्थिति में हमारे लिए उस से अधिक उपयुक्त बात और कोई नहीं दिखायी देती; "एकता से सब का जीवन है; फूट से सब की मृत्यु" ।

चतुर्थ परिच्छेद

नेतृत्व का दंड

सन् १९४२ ई० में कैडेलक मोटर कम्पनी ने 'नेतृत्व का दंड' नामक शीर्षक से एक विज्ञापन प्रकाशित कराया था जिस को अमरीका के विज्ञापन क्षेत्र में अभी तक याद किया जाता है। इस विज्ञापन में इस बात पर जोर दिया गया था कि नेतृत्व का जहाँ पुरस्कार है, वहाँ दंड भी है। नेतृत्व का दायित्व भारी होता है। प्रत्येक व्यापारी यह जानता है कि जब उस की कोई वस्तु या उस की फर्म प्रसिद्धि पा जाती है तो उस को विवश हो उस की विशिष्टता और नैतिक धरातल को ऊँचा रखने की आवश्यकता रहती है। यदि व्यापारिक क्षेत्र में नेतृत्व का ऐसा दायित्व होता है, तो यह स्पष्ट ही है कि जब एक राष्ट्र अपने आप को स्वतंत्र राष्ट्रों का नेता बना पाता है तो उस के कर्तव्य तो और भी गहन तथा विस्तृत होने चाहिए। इस देश की सब से बड़ी ज़िम्मेदारी अपनी शक्ति को बनाये रखने की है। इसी के ऊपर हमारे अन्य दायित्वों का पूरा होना अवलम्बित है। स्वाधीनता और तानाशाही के बीच चलने वाले साम्प्रतिक संघर्ष में अमरीका की स्थिति एक 'डायनमो' (Dynamo) के समान है— जहाँ से शक्ति का संचार होता है। यदि यह 'डायनमो' रुक जाय या धीमा पड़ जाय तो समस्त संसार

विश्व शान्ति के उपाय

प्रकाश-विहीन हो जायगा। इस 'डायनमों' पर आवश्यकता से अधिक भार भी पड़ सकता है। यदि ऐसा हुआ तो यह टूट जायगा। यही कारण है कि हम को ऐसे दायित्व अपने ऊपर नहीं लेने चाहिए जिन को पूरा करने में हम असमर्थ रहें। हमारे पारस्परिक झगड़े इस 'डायनमों' के लिए 'शार्ट सर्किट' साबित हो सकते हैं और यह 'डायनमों' कमजोर पड़ सकता है।

इस समय हम जिस संकट से गुज़र रहे हैं उस का सामना करने के लिए हम को एकता सूत्र में आबद्ध होना आवश्यक है। हम किसी एक दल विशेष को या कुछ विशेष व्यक्तियों को अपनी कठिनाइयों का उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते। हम को अपना काम छोड़ कर कर्तव्य से विमुख होने के लिए बहाने नहीं ढूँढने चाहिए। यदि हम ने ऐसा किया तो जब कि हम अतीत पर दृष्टि लगाए होंगे भविष्य हमारे हाथ से निकल जायगा। हम को अपनी सामान्य भूल को स्वीकार करना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि इस समय की हमारी इस दुर्बलता का कारण हमारी वह भूल थी जो हम ने रूस के युद्धोत्तर व्यवहार के आँकने में की थी। हम में से अधिकांश लोगों का विचार यह था कि द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् रूस हमारे साथ शान्ति स्थापना के कार्य में सहयोग देगा। निश्चय ही मेरा अपना भी मत था, और मैं अपने उस विचार के लिए क्षमा प्रार्थी नहीं होना चाहता। हम ने दूसरी घातक भूल यह की थी कि जापान पर विजय प्राप्त करने के बाद तुरंत ही अपनी श्रेष्ठतम सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया। अब इस के लिये कांग्रेस (अमरीका की धारा सभा) को दोष देने की प्रवृत्ति देखने में आती है। व्यक्तिगत रूप से मैं यह कह सकता हूँ कि मैं शुद्ध मन से कांग्रेस को दोष नहीं दे सकता।

मेरे पाँचों पुत्र युद्ध में थे और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जापान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् मेरी पत्नी और मैंने यह आग्रह किया था कि हमारे पुत्र तुरंत ही वापस बुला लिये जायँ । इसी प्रकार का व्यवहार अन्य माता-पिताओं का भी रहा होगा । सम्भवतः हम सभी के मन में इतना पाप है कि हम को दूसरों को दोषी ठहराने की धृष्टता नहीं करनी चाहिए ।

जब तक इस देश के दोनों राजनीतिक दलों की सम्मति द्वारा स्वीकृत विदेश नीति का अवलम्बन नहीं किया जायगा तब तक हम अपने सार्वभौम दायित्वों को पूरा करने का प्रयत्न आरम्भ भी नहीं कर सकते । यदि हमारी विदेश नीति प्रभाव युक्त होनी है तो रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेटिक ❀ पार्टियों को सच्चे हृदय से एक मत हो कर काम करना चाहिए । जब कभी हम संसार को सम्बोधित करें तो हमारी वाणी के पीछे किसी एक दल विशेष का नहीं वरन् समस्त राष्ट्र का बल होना चाहिए । मैं एक क्षण के लिए भी यह सुझाव नहीं रख रहा हूँ कि हमारी विदेश नीति पर विचार-विमर्ष या वाद-विवाद नहीं होना चाहिए, किन्तु मैं यह विश्वास करता हूँ कि जब कोई डेमोक्रेट या रिपब्लिकन किसी विषय पर मतदान करे तो उस के पीछे, अमरीकन होने के नाते उस की व्यक्तिगत धारणा होनी चाहिए न कि एक रिपब्लिकन या डेमोक्रेटिक सदस्य की धारणा । आज की स्थिति में कोरी रिपब्लिकन या डेमोक्रेटिक नाम की विदेश नीति असंभव है । इस

❀ अमरीका में केवल दो ही ऐसे प्रमुख राजनैतिक दल हैं, जो उस का शासन चलाते रहते हैं । इन दोनों दलों के नाम डेमोक्रेटिक पार्टी और रिपब्लिक पार्टी है । आज कल शासन सूत्र डेमोक्रेटिक पार्टी के हाथ में है ।

विश्व शान्ति के उपाय

समय हमारी केवल एक ही विदेश नीति हो सकती है और वह है समस्त अमरीका की राष्ट्रीय विदेश नीति। यह हमारा सर्व प्रथम कर्तव्य है।

विदेश नीति के संयुक्त आधार के सिद्धांत पर राजनीतिक दलों की पारस्परिक चालों का भ्रंश प्रभाव पड़ा करता है विशेषतः ऐसी स्थिति में जब कि एक ही पार्टी विशेष के हाथ में शासन सत्ता तथा व्यवस्थापिका सभा दोनों ही की बागडोर हो। वैसे तो यदि 'क्लाइट हाउस' (प्रेसीडेंट के निवास स्थान) पर एक दल का और कांग्रेस पर दूसरे दल का अधिकार हो तब भी ऐसा हो सकता है। हम में से अनेकों लोगों को याद होगा कि पहिले विश्व युद्ध के पश्चात् किस प्रकार सेनेटर हैनरी केबट लौज (Senator Henry Cabot Lodge) ने प्रेजीडेंट विल्सन की विदेश नीति का पार्टी बाजी में पड़ कर विरोध कर के अमरीका को लीग आफ नेशन्स से अलग रख कर उस अन्तराष्ट्रीय संघ को अपने पावों पर खड़ा होने लायक नहीं छोड़ा था। किन्तु मैं गर्व के साथ यह कह सकता हूँ कि गत विश्वयुद्ध के पश्चात् हमारी विदेश नीति को जिस प्रकार दोनों दलों का समर्थन मिला है उस से अन्य देशों में हमारी सरकार की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी है। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था (ECA) का जन्म ८० वीं कांग्रेस के हाथों हुआ। इस कांग्रेस में रिपब्लिकन पार्टी का बहुमत था किन्तु इस संस्था को दोनों ही दलों का पूर्ण सहयोग मिला। मैं समझता हूँ कि इस का श्रेय हम को उस महान व्यक्ति को देना चाहिए जिन्होंने पिछले कुछ सालों से अमरीका के लिए संयुक्त विदेश नीति का प्रतिपादन करते रहे हैं—उतने ही ज़ोर के साथ जितने ज़ोर के साथ उन के बाबा ने इस प्रकार की नीति का किसी समय इतना तीव्र विरोध किया

था। मेरा अभिप्राय मैंसे चुसेट के सेनेटर हैनरी कैबट लाज से है। सेनेटर रौम कानली भी संयुक्त विदेश नीति का समर्थन करते रहने के लिए प्रशंसा के पात्र हैं। वे ८० वीं कांग्रेस के विदेश सम्बन्ध समिति अल्पसंख्यक दल के नेता तथा ७६ वीं और ८१ वीं कांग्रेस में उस समिति के अध्यक्ष होने की हैसियत से इसी नीति का प्रतिपादन करते रहे हैं। इसी प्रकार रिपब्लिकन दल के सदस्य चार्ल्स डौक ईटन जिन को साकार शक्ति ही कहा जाय तो अनुचित न होगा तथा साधारण सभा की विदेश सम्बन्ध समिति के सदस्य “जज” की (Kee) जो डेमोक्रेट हैं इस नीति का समर्थन करते रहने के लिए बधाई के पात्र हैं।

किन्तु इस “दो दली” संयुक्त नीति या जैसा कि वे कहा करते हैं, इस संयुक्त नीति का मुख्य श्रेय सेनेटर आर्थर एच. वैन्डेन वर्ग को ही मिलना चाहिए। कांग्रेस की राज्यसभा (Senate) की विदेश सम्बन्ध समिति के वे जब अध्यक्ष थे उस समय विदेश नीति सम्बन्धी सभी प्रस्तावों को सर्व सम्मति से पास किया जाता था। समिति के १३ के १३ सदस्य सदा एक मत ही रहा करते थे।

सन् १९१० ई० के मार्च मास में जब हमारी विदेशी नीति महान संकट से हो कर गुजर रही थी तब उसकी रक्षा करने वालों के नेता श्री वैन्डेन वर्ग ही थे। सन् १९४८ ई० के नवम्बर मास में होने वाले निर्वाचन के समय ‘दो दली’ विदेश नीति की जड़ खोखली होती जा रही थी। इसका कारण यह था कि डेमोक्रेटिक पार्टी के उन नेताओं ने जो शासन सूत्र सँभाले हुए थे, रिपब्लिकन नेताओं से परामर्श करना छोड़ दिया था। कुछ दूर तक इसका कारण यह भी था कि दोनों दलों के एकान्तवादियों ने हमारी विदेश नीति पर आक्रमण करना शुरू कर दिया था। इस समय वैन्डेन वर्ग चिन्तित थे। उस संकट पूर्ण स्थिति में

विश्व शान्ति के उपाय

बिना दोनों दलों का समर्थन प्राप्त किये आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के लिए पर्याप्त मात्रा में रुपया मिलने की आशा कम दिखायी देती थी। मैं सेनेटर वैंडेन वर्ग से मिला और मैंने यह अनुरोध किया कि वह अपने प्रभाव का प्रयोग करें और विदेश नीति के पीछे दोनों दलों का समर्थन बनाये रहें। उस समय वह बीमार थे। परन्तु अपनी रोग शैथ्या से ही उन्होंने दूसरे दिन एक अति भावपूर्ण एवं प्रबल पत्र लिखा जिसका तात्पर्य यह था:—

“आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का जन्म रिपब्लिकन कांग्रेस के हाथों हुआ था; डेमोक्रेटिक पार्टी का उसमें पूरा और स्वतंत्र सहयोग प्राप्त था। इस प्रकार की कार्यात्मक एकता हमारी सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं की प्रतीक है और अमरीका की समस्त जनता के लिए साम्प्रतिक बाहरी खतरों से बचने का यही सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। आप आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का काम चलाते समय दृढ़ सकल्प के साथ इसी निष्पक्ष नीति का अनुसरण करते रहे हैं। अमरीका का एक नागरिक होने के नाते आप को अमरीका के एक दूसरे नागरिक के रूप में मैं अत्यन्त आभारी हृदय से धन्यवाद देता हूँ। एकता में विजय है, विभाजन में पतन। मैं अमरीका की विजय चाहता हूँ।”

श्री वैंडेन वर्ग के उपरोक्त वक्तव्य ने वाशिंगटन में प्रायः सभी पर गहरा प्रभाव डाला और देश के समस्त पत्रों ने उसकी चर्चा की। प्रेजीडेंट ट्रूमैन ने चुपके-चुपके पुनः रिपब्लिकन नेताओं से परामर्श प्रारम्भ कर दिया। विदेश विभाग के मन्त्री श्री अचेसन ने, जौन फोस्टर डलस को जो न्यूयार्क के भूतपूर्व रिपब्लिक सेनेटर हैं और उच्चतम नीति निर्णायकों में से एक हैं तथा श्री जौन शरमन कपूर को जो कैन्टुकी के भूतपूर्व सेनेटर हैं, अपना परामर्श दाता नियुक्त किया। श्री अचेसन ने

यह भी प्रबंध किया कि दोनों दलों के सेनेटर और प्रतिनिधि उनसे अक्सर विचार विमर्श करते रहें। सेनेटर वैन्डेन वर्ग के पत्र के विद्युत जैसे प्रभाव के कारण आर्थिक सहयोग संचालन संस्था तथा अन्य विदेश नीति सम्बन्धी कार्य वाहियों को दोनों दलों की ओर से बिना किसी पक्षपात के समर्थन मिलने लगा। ऐसी रचनात्मक संयुक्त विदेश नीति के अतिरिक्त, अपने प्रति तथा अन्य राष्ट्रों के हित के लिए हमारा यह भी कर्तव्य है कि हम अपने आर्थिक जीवन को अनियमित मुद्रा प्रसार (Inflation) से बचाए रहें। यह हमारा दूसरा कर्तव्य है।

यदि अमरीका में अनियमित मुद्रा प्रसार गम्भीर रूप धारण कर ले तो शीघ्र ही इसका प्रभाव सारे संसार पर पड़ेगा। अनियमित मुद्रा प्रसार योरप में आर्थिक सहयोग संचालन की मुद्रा प्रसार विरोधी नीति की सफलता का निराकरण कर देगा। सन् १९४८ ई. में योरप के अधिकांश देशों में आर्थिक अराजकता छापी हुई थी। इस समय वहाँ आर्थिक स्थिरता पायी जाती है। यदि अमरीका में तेजी से कीमतें ऊँची उठने लगे तो यह स्थिरता भंग हो जायगी और योरप में पुनरुत्थान और शर्द्धीकरण के कार्यक्रम को जो सफलता मिली वह भी संकट में पड़ जायगी।

हम अरसे से यह देखते आये हैं कि जब कीमतों और मजदूरी में तेजी से वृद्धि होने लगती है तो स्थायी आय वाले, जैसे कि अध्यापक, सरकारी कर्मचारी, पेंशन पर रहने वाले लोग या वे लोग जिन को वार्षिक भत्ते पर रहना पड़ता है तबाह होने लगते हैं। किन्तु आज की स्थिति में अनियमित मुद्रा प्रसार से ये वेतन भोगी लोग ही कष्ट नहीं पायेंगे वरन् हम सब को ही भारी चोट लगेगी। क्यों कि अनियमित मुद्रा प्रसार से सुरक्षा प्रबंध के व्यय में ही वृद्धि नहीं होगी बल्कि ऐसे

विश्व शान्ति के उपाय

समय में जब हम को अधिकतम कार्य क्षमता की आवश्यकता है हमारा आर्थिक जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जायगा ।

हम को अवश्य ही अनियमित मुद्रा-प्रसार को रोकना चाहिए । किन्तु किस प्रकार ? अनियमित मुद्रा प्रसार का मूल कारण यह है कि समाज को जितनी चीजों की आवश्यकता होती है उतनी चीजें बाजार में नहीं मिलतीं । इस स्थिति का सामना करने के लिए पैदावार को बढ़ाना चाहिए, आवश्यकताओं को कम करना चाहिए या दोनों को मिला कर किसी समन्वय से काम लेना चाहिए ।

कच्चे माल और बने बनाये सामान की कमी के कारण जब चीजों का मिलना दुष्प्राप्य हो जाता है और कीमतें बढ़ जाती हैं, ऐसी स्थिति को रोकने का सर्वश्रेष्ठ उपाय अधिक से अधिक सामान पैदा करना और उसको अधिक से अधिक लोगों में बाँटना हो है । यदि बाहर से मिलने वाले कच्चे माल की कमी है तो हम को एक ओर तो अपने देश में उत्पादन बढ़ाना चाहिए तथा विदेशों में उत्पादन को प्रोत्साहन देना चाहिए—विशेष रूप से ताँबा, क्रोम, कोबाल्ट, रबड़, मैंगनीज आदि नैसी महत्वपूर्ण सामग्रियों के क्षेत्र में । आर्थिक सहयोग संचालन संस्था देर से इस प्रकार की सामग्रियों के उत्पादन को जरूरत के समय काम आने के लिए इकट्ठा करने की दृष्टि से प्रोत्साहन देती रही है ।

अपने देश में सरकार को उद्योग फैलाने के लिए ऐसा विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए जिस से लोग अपने कल-कारखानों की उत्पादन शक्ति को बढ़ा सकें । इस दिशा में एक ऐसा प्रोत्साहन भी है जिस में कुछ खर्च नहीं करना पड़ा किन्तु जिस से अधिकाधिक सामान पैदा करने के लिए नये रचनात्मक आयोजनों की सृष्टि हो सकती है । यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि सुरक्षा के लिए बनने वाले सामान

के लिए इस्पात तथा अन्य सामग्रियों को साधारण रचनात्मक योजनाओं में काम आने वाली सामग्रियों की अपेक्षा प्रथम स्थान मिलना चाहिए। यदि हम दूरदर्शिता से काम लें और अपनी सैनिक और साधारण नागरिकों की तात्कालिक और दीर्घकालीन आवश्यकताओं को समझें और उन में उपयुक्त समन्वय स्थापित करें तो हम अपनी खानों और कल कारखानों का उत्पादन इतना बढ़ा सकते हैं कि सभी प्रकार की सामग्री पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकती है। किन्तु इस दिशा में हम कुछ भी करें केवल उसी से अनियमित मुद्रा प्रसार नहीं रोका जा सकता। इस प्रकार की अवस्था पर अधिकार पाने के लिए यह प्रायः स्वाभाविक ही है कि हम प्रत्यक्ष नियंत्रणों की बात सोचें, विशेषरूप से कीमतों सम्बन्धी नियंत्रणों की। दुर्भाग्यवश कीमतों पर नियंत्रण रखने भर से अनियमित मुद्रा प्रसार न तो टाला ही जा सकता है और न उस पर काबू ही किया जा सकता है। निस्सन्देह, क्योंकि नियंत्रणों का अभिप्राय कीमतों को बढ़ने से रोकना है, उससे विक्रेताओं को कम रुपये से कम मिलने की अपेक्षा अधिक सामान मिलने लगता है। इसी कारण से कीमतों के नियंत्रण के साथ-साथ 'राशनिंग' का प्रचलित करना भी आवश्यक हो जाता है। दोनों को एक साथ लागू किया जाय तो कीमतों के नियंत्रण तथा राशनिंग से खरीदारों को जो कुछ मिलता है और जितना रुपया उनको अपनी खरीदी हुई चीजों के लिये देना पड़ता है उस पर प्रतिबन्ध सा लग जाता है तथा राशन होने वाली वस्तुओं की माँग सीमित हो जाती है। किन्तु दूसरी ओर इस का परिणाम यह होता है कि जिन चीजों का राशनिंग नहीं है उन की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार की माँग की वृद्धि को रोकने के लिये राशनिंग का क्षेत्र अधिकाधिक बढ़ाना पड़ता है। लोगों के पास अपरमित क्रय

विश्व शान्ति के उपाय

शक्ति न हो जाय इसलिये कीमतों के नियंत्रण और राशनिंग के साथ मजदूरी पर भी नियंत्रण लगाना आवश्यक हो जाता है। मूल्य नियंत्रण, राशनिंग, तथा मजदूरी नियंत्रण रूपी त्रिमुखे अंकुश से जहाँ कुछ सहायता मिलती है; वहाँ उस के बहुत से अवगुण भी देखने में आते हैं। जब आर्थिक जीवन स्वतंत्र होता है तो उस की स्वाधीनता ही कीमतों, मजदूरी और खर्च के ढाँचे में संतुलन बनाए रखती है। किन्तु जब बाज़ार में क्रय और विक्रय की चतुराई के स्थान में सरकारी कर्मचारियों की आज्ञाएँ चलने लगती हैं तो इसका संतुलन बिगड़ जाता है। युद्ध के पश्चात् जब सर्गपरि मूल्य निर्धारण समिति (OPA) का अन्त हुआ तो हमने देखा कि हमारी आर्थिक व्यवस्था में बहुत कुछ विकार तथा असंतुलन आ गया था। मेरी राय में नियंत्रणों का सब से बड़ा दोष यह है कि वे उत्पादन में अनिवार्यतः बाधा डालते हैं। दफ्तरों की फाइलों का पार पाना सरल काम नहीं; उसके लिए असीमित समय खोना पड़ता है। इस से भी अधिक भय की बात यह है कि जब निर्णायक शक्ति आवश्यकता से अधिक केन्द्रीभूत हो जाती है तो आर्थिक जीवन में दुर्बलता आ जाती है। हमारे आर्थिक जीवन की विशेषता यह है कि उसमें निर्णायक शक्ति किसी एक व्यक्ति या संस्था में निहित नहीं है इसी से उसमें स्वाभाविकता है। मैंने यह देखा है कि जिन देशों में निर्णय करने का अधिकार व्यापारियों के हाथ में नहीं रहता वहाँ वे किकर्तव्यविमूढ़, उदासीन और प्रेरणा-हीन हो जाते हैं। यह स्वाभाविक बात है कि ऐसी स्थिति में आर्थिक जीवन सबल तथा प्रगतिशील नहीं रह सकता।

प्रत्यक्ष नियंत्रणों के प्रति इन सब सैद्धान्तिक आपत्तियों के बावजूद भी ऐसी अवस्थाएँ भी उत्पन्न हो जाया करती हैं जिनमें नियंत्रण

लगाना आवश्यक हो जाता है। इस समय जो संकट उपस्थित है उसमें ऐसी ही परिस्थितियाँ पायी जाती हैं।

प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत नियन्त्रणों का प्रयोग कम से कम करने के लिए यह आवश्यक है कि नियन्त्रण अप्रत्यक्ष और अव्यक्तिगत हों। इस दिशा में ऋण के लेन-देन पर नियन्त्रण लगाना सब से अधिक प्रभाव युक्त सिद्ध होता है। फेडरल रिजर्व बोर्ड ने पहले ही यह नियम बना दिया है कि खरीदारी में तुरन्त दी जाने वाली रकमों अधिक से अधिक होनी चाहिए और किशतों की रकम और मियाद कम से कम। रहने के लिए बनाये जाने वाले मकानों की गिरवी की शर्तें सख्त कर दी गयी हैं और कुछ प्रकार की इमारतों पर रुपये का उधार देना लेना बिल्कुल ही बन्द कर दिया गया है। इन दोनों क्षेत्रों में और भी बहुत कुछ हो सकता है, उदाहरण के लिए प्रत्येक बैंक को आदेश होना चाहिए कि उसके रिजर्व फंड (स्थायी निधि) में अधिक से अधिक रकम होनी चाहिए। ऋण के लेन-लेन पर इस प्रकार के नियन्त्रण लगाने का लाभ यह है कि इससे जनता को स्वतः ही कम से कम खरीदारी करने के लिये प्रोत्साहन मिलता है कि वह कम से कम खर्च करती है; और साथ ही उसके पास इतनी अधिक क्रय शक्ति भी नहीं रह जाती जिसके इधर उधर फूट निकलने का डर हो। इस प्रकार के नियन्त्रणों को कार्यान्वित करने के लिये पुलिस की देख-रेख की भी आवश्यकता नहीं है और इस पर अमल कराने से किसी को कष्ट भी नहीं होता। इनका प्रभाव सीधे हमारे व्यक्तिगत या व्यापारिक जीवन पर न हो कर समस्त आर्थिक जीवन पर ही होता है।

व्यापारियों तथा खपत करने वालों की माँग को कम करने का उपाय केवल नियन्त्रण ही नहीं है। सरकार जो खर्च करती है उस में भी कमी

विश्व शान्ति के उपाय

की जानी चाहिए, विशेषतः विभिन्न राज्यों और स्थानीय सरकारों द्वारा इमारतों आदि पर खर्च की जाने वाली रकमों में। सारे देश में अधिक से अधिक बचत की जा सकती है और की जानी चाहिए। लड़ाई के दिनों में सरकार के अर्थ विभाग की ओर से “सेविंग बांड” बेच कर अधिकाधिक बचत करने में सफलता मिलती रही थी। ऐसी संस्थाएँ भी जो व्यक्तिगत रूप से आर्थिक लेन-देन करती रहती हैं बचत के कार्य में योग देती रह सकती हैं। इन गति-विधियों को और भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इन नियन्त्रणों के अतिरिक्त हमारे अपेक्षतया स्वतन्त्र आर्थिक जीवन में अनियमित मुद्रा प्रसार को रोकने का सब से अच्छा साधन कर लगाना ही है। यदि प्रत्येक अमरीका वासी अधिकाधिक कर दे कर हमारी सुरक्षा योजना को आत्मनिर्भरता के आधार पर सफल करा सके तो हम संसार भर में अमरीकन डालर के प्रति यह भावना उत्पन्न कर सकेंगे कि वह विश्वसनीयता और अखंडता का प्रतीक है और साथ ही अपने आर्थिक स्थायित्व की ओर भी एक बड़ा भारी कदम उठा चुके होंगे।

नेतृत्व का तीसरा दायित्व यह है कि हम एक ऐसी राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय योजना तैयार करें जिस के अनुसार कम पायी जाने वाली सामग्रियाँ विभिन्न राष्ट्रों को उपयुक्त मात्रा में मिल सकें। केवल इसी प्रकार हम इन महत्वपूर्ण सामग्रियों की कीमतों को ऊँचा उठने से रोक सकेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओं को कार्यान्वित करना आसान काम नहीं है किन्तु जहाँ तक दीन, ताँबा, ऊन और रबड़ का सम्बन्ध है नियमित अथवा अनियमित समझौता करना आवश्यक है ताकि इन को प्राप्त करने के लिए विभिन्न राष्ट्रों में होने वाली पारस्परिक प्रतियोगिता को रोका जा सके।

स्वतंत्र देशों का नेता होने के नाते अमरीका का चौथा कर्तव्य यह है कि वह विदेशी व्यापार के विषय में अपने रवैये में परिवर्तन करे। 'शान्ति के महान संरक्षक' ग्रेट ब्रिटेन ने १६ वीं शताब्दी में व्यापार की ऐसी विश्व-व्यापी व्यवस्था रक्खी थी जिस से सब का भला हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिरता को शक्ति प्राप्त हुई। अमरीका को भी ऐसी ही व्यवस्था का सृजन करना चाहिए। लगभग एक शताब्दी तक हम अपने तट-करों, अपनी शैशव-कालीन उद्योगों की रक्षा के प्रबन्धों तथा अपने असीम साधनों के आधार पर खड़ी की गयी आत्म-निर्भरता की दीवार के प्रश्रय में विश्राम करते रहे हैं। दुनियां को हम ने बेचा बहुत कुछ किन्तु उस से खरीदा बहुत कम जिस का परिणाम यह हुआ कि विश्व व्यापार का सन्तुलन बिगड़ गया। इस के अतिरिक्त पिछले कुछ दिनों में हमारे आयात और उत्पादन में ताल-मेल न रहने के कारण उस असंतुलन में और भी वृद्धि हुई है। सन् १९२९ ई० से सन् १९४८-४९ ई० तक जब कि हमारे कल-कारखानों और खेतों का उत्पादन ६० प्रतिशत बढ़ा है हमारे आयात व्यापार में केवल ५ प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है। ऐसी स्थिति में अन्य राष्ट्र हम से मुद्रा प्राप्त किये बिना सामान नहीं खरीदते रह सकते थे। इसी कारण प्रथम महा-युद्ध के पश्चात् से हम विभिन्न ऋणों और अन्य योजनाओं द्वारा अन्य राष्ट्रों की मदद करते रहे हैं, इस प्रकार की सहायता आर्थिक सह-योग संचालन संस्था की स्थापना के बाद तो अपनी चरम सीमा पर ही पहुँच गयी है। पिछले ३५ वर्षों में अमरीका युद्ध सम्बन्धी व्यय को छोड़ कर पश्चिमी योरप को २२ अरब डालर की सहायता दे चुका है। परोपकार की भावना के अतिरिक्त इस प्रकार की सहायता दे कर हम ने अपने निर्यात व्यापार की भी मदद की क्योंकि जितना रुपया अमरीका ने

विश्व शान्ति के उपाय

दिया उस का प्रायः कोई भी भाग बाहर नहीं रहा, यह अमरीका में ही बना सामान खरीदने के लिए वापस आ गया है ।

मेरे विचार में देन-लेन ही विश्व व्यापार का एक मात्र सही आधार है । यदि हम चाहते हैं कि बाहर के लोग हमारा सामान खरीदें और उस के लिये हम को डालर दे सकें तो हम को उन्हें उतने डालर कमाने का अवसर भी देना चाहिए जितने की उन को आवश्यकता है । स्पष्ट ही है कि संसार का सब से बड़ा साहूकार देश होने के नाते अमरीका को अधिकाधिक आयात का स्वागत करना चाहिए । इस का अर्थ यह है कि बाहर से आने वाले सामान पर कर और चुंगी लगाने की जो प्रणाली हम ने स्थापित की है उस की फिर से जाँच करनी चाहिए और देखना चाहिए कि आज की स्थिति में वह कहाँ तक उपयुक्त है । सन् १९३४ ई० से हम इस दिशा में कुछ प्रगति करते रहे हैं और पारस्परिक व्यापार सन्धियों द्वारा हम ने इन करों को कम किया है तथा 'स्मूट होले' (Smoot Hawley) कानून द्वारा लगाये गये ऊँचे करों से जो हानि और अपयश हुआ था उस में भी कुछ कमी हुई किन्तु अभी हम को और आगे बढ़ने की आवश्यकता है । बाहर से आने-वाली कई वस्तुएँ ऐसी हैं जिन पर हम अभी तक ११० प्रतिशत कर लगाते हैं । इस के अलावा इस विषय में व्यवहार में आने वाली नीति अनुपयुक्त और विघ्नात्मक है । हमारे तट-कर सम्बन्धी कानून में सहस्रों श्रेणियाँ तथा उपश्रेणियाँ हैं, बहुत सी उन में से अस्थिर तथा स्वेच्छा-चारितापूर्ण हैं । उदाहरण के लिए कुछ सूती कालीनों पर १० प्रतिशत आयात-कर लगता है किन्तु उन के किनारों पर बार्डर बना हो तो उन पर ४० प्रतिशत कर भी लग सकता है । कई बार बाहर से सामान मँगाने वालों को उस समय तक यह पता भी नहीं होता कि उन पर

कितना कर लगेगा जब तक कि उन्होंने सामान बेच न लिया हो क्योंकि चुंगी अधिकारी अपने लिए यह अधिकार सुरक्षित रखते हैं कि आज जिस तालिका के अन्तर्गत कर लगाया है कल उस को बदला जा सकता है।

यह स्पष्ट ही है कि कांग्रेस को तुरंत ही “चुंगी कर स्पष्टीकरण नियम” को जो इस समय उस के सामने है पास कर देना चाहिए। मेरा यह भी विचार है कि कांग्रेस को इस विषय में प्रेजीडेन्ट को आवश्यकतानुसार चुंगी कर प्रणाली में हेर-फेर करने का अधिकार देना चाहिए।

इस समय जब देश में अनियमित मुद्रा प्रसार प्रचलित है प्रेजीडेन्ट को यह अधिकार होना चाहिए कि वह बाहर से आने वाली दुष्प्राप्य सामग्रियों पर लगाने वाली चुंगी को कम कर सकें या बिल्कुल ही हटा सकें जिस से कीमतों में कमी रहे। इस से अमरीका के किसी उद्योग या आर्थिक वर्ग को विशेष हानि नहीं होगी।

हम को तुरन्त ही अपनी केन्द्रीय सरकार की कानूनी पुस्तकों से उन कानूनों को हटा देना चाहिए जिन के द्वारा विभिन्न सरकारी संस्थाएँ देशी सामान खरीदने को बाध्य हैं। चाहे विदेशी सामान कितना ही अच्छा और कम कीमत हो मेरे विचार में इस कानून के द्वारा सरकार को पुनः शस्त्रीकरण के कार्यक्रम में तथा सुरक्षासम्बन्धी मदों में करोड़ों डालर अधिक खर्च करना पड़ता है। इस के अतिरिक्त जब हम दूसरे देशों से यह आग्रह करते हैं कि वे किसी देश विशेष के साथ व्यापार करने में पक्षपात से काम न लें और हम स्वयं पक्षपातपूर्ण नीति बरतें तो हमारी नीति असुविधा जनक और असंगत प्रतीत होने लगती है।

इसी प्रकार का दूसरा संकुचित कानून यह है कि अमरीका द्वारा

विश्व शान्ति के उपाय

दिये गये रुपये से बाहर के लोगों ने यहाँ से जो सामान खरीदा हो उस का ५० प्रतिशत भाग अमरीकन जहाज़ों द्वारा ही ले जाया जाना चाहिए। केवल इसी कारण आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की योजना को कार्यान्वित करने के लिए लाखों डालरों का अतिरिक्त व्यय करना पड़ा है। यदि यह सामान जिन देशों को दिया गया था उन्हीं में से किसी के जहाज़ों द्वारा ले जाया गया होता तो इस प्रकार उन को जो बचत होती उस से वे अमरीका में और सामान खरीद सकते थे।

यह आवश्यक है कि अमरीका के पास एक शक्तिशाली जहाज़ी बेड़ा होना चाहिए। इस प्रकार के बेड़े को कायम रखने के लिए जिस सरकारी सहायता की आवश्यकता पड़े उस में जो कुछ मेरा हिस्सा हो मैं उस को सहर्ष अदा करने को तत्पर हूँ लेकिन, मेरे विचार में, यह तय करने से पहले कि हमारे पास यह बेड़ा कितना बड़ा हो और किस प्रकार का हो, हम को नारवे, वेल्जियम, हालैंड, ग्रेट ब्रिटेन आदि उन देशों की जहाज़ी क्षमता को भी ध्यान में रखना चाहिए जिन को अटलांटिक महासागर के चारों ओर बसने वाली मानव जाति की सामान्य रक्षा के लिए अपने जहाज़ देने हैं। एक बार हम यदि ऐसा निश्चय कर लें तो उस के बाद जितनी भी आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो, हम अवश्य दें। पर कोई काम छिपा कर नहीं करना चाहिए।

सम्भवतः हमारे विदेश व्यापार की सब से बड़ी दुर्बलता हमारी अपनी कृषि सम्बन्धी नीति है जो एरण्ड पेड़ की तरह पिछले तीस वर्षों से बिना किसी योजना के या बिना किसी विचार के कि उस का संसार पर या स्वयं हमारे अपने आर्थिक जीवन पर क्या असर होगा, फैलती रही है। फिर भी समस्त संसार के आर्थिक जीवन की

कुंजी कृषि ही है । वर्तमान नीति की उल्लखन यह है कि प्रत्येक किसान को उस की पैदावार की कीमत के विषय में यह आश्वासन प्राप्त है कि वह एक न्यूनतम निश्चित धरातल से नीचे नहीं गिरने दी जायगी । आरंभ में इस नीति का श्री गणेश इस लिए किया गया था कि किसानों को रूई और गेहूँ की महत्वपूर्ण फसलें पैदा कर के घाटा न हो । किन्तु निरंतर इस प्रकार के मूल्याश्वासन की परिधि बढ़ती रही है जिस का परिणाम यह हुआ है कि आज किसान द्वारा उत्पादित ५१ प्रतिशत वस्तुएँ इस के अन्तर्गत हैं—संसार में कीमत सम्बन्धी इतना बड़ा संरक्षण कभी किसी को प्राप्त नहीं हुआ था ।

इस समय किसानों द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं की कीमत के विषय में सरकार की ओर से यह आश्वासन है कि उन को किसी भी अवस्था में “पैरिटी” का ९० प्रतिशत मिलता रहेगा । “पैरिटी” की परिभाषा के लिए कुछ इकाइयाँ निश्चित हैं उदाहरण के लिए यदि आलू और सूअर के गोदत को लीजिये । प्रत्येक ३८ सेर (एक बुशल) आलू और ५६ सेर (हंडरेडवेट) सूअर का गोदत एक-एक इकाइयाँ हैं । कीमत निर्धारित करते समय यह ध्यान में रखा जाता है कि किसी वस्तु विशेष की सन् १९१० और १४ ई० में या पिछले १० वर्षों में क्या कीमत रही थी ।

इस प्रकार कीमतों में तेज़ी होने से इस देश में तथा उस के बाहर चीजों की खपत परिमित होने का डर है । खपत करने वाले समस्त प्राप्य सामग्री को नहीं खरीद सकते फलतः गोदामों और खत्तियों में सामान बढ़ता चला जाता है और क्यों कि अमरीका की कीमतें अस्वाभाविक रूप से ऊँची हैं समुद्र पार के किसान बिना आर्थिक कारणों को ध्यान में रखे हुए कपास और गेहूँ की फसलें पैदा करने में लगे

रहते हैं ताकि ये वस्तुएँ इस देश से न मँगानी पड़ें। किसानों की ऊँची कीमतों के कारण हमारे निर्यात व्यापार में जो कमी हो रही है उस से प्रत्येक नागरिक को गम्भीर चिन्ता होनी चाहिए क्यों कि अमरीका के निर्यात व्यापार का २४ प्रतिशत भाग जो दूसरे शब्दों में ३२ अरब डालर है, पिछले २० साल से, खेती थी, उपज का ही रहा है। इस के अतिरिक्त दक्षिण पश्चिम के कपास पैदा करने वाले समस्त प्रदेश की उपज की खपत का दारोमदार विदेशी खरीदारों पर ही है। जो बात रूई के सम्बन्ध में टैक्साल और औक्लाहोमा पर लागू होती है वही बात गेहूँ के विषय में कन्सास और वाशिंगटन पर चरितार्थ होती है। एक ऐसे नागरिक की हैसियत से जिस का यह विश्वास है कि उत्पादन को कम खर्च से अधिकाधिक बढ़ाना ही स्वाधीन आर्थिक जीवन का स्रोत है, मुझ को यह अनुभव कर के चिन्ता होती है कि इस सिद्धान्त को उलटने के कारण अमरीका की खेती पर कैसा घातक प्रभाव हुआ है। मेरा यह विश्वास है कि चाहे और देशों के किसान सरकार का प्रश्रय पाने के कितने ही इच्छुक रहते हों, अमरीका का किसान ऐसा नहीं है। इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि कीमत निर्धारित करने में जिस जड़ता से काम लिया जा रहा है उस से प्राप्य सामग्री तथा उस की माँग के पारस्परिक तालमेल के सिद्धांत (Supply and demand) को आँच ही नहीं आती वरन् जीवन में नित नयी पाँबदियाँ, सरकारी हस्तक्षेप और नियन्त्रण छाये जा रहे हैं। हमारे कृषि विभाग को, जो कांग्रेस की देख-रेख में काम करता है, या तो किस साल किस चीज की कितनी खेती की जाय इस पर नियन्त्रण लगाना होता है, बिक्री के “कोटे” तै करने पड़ते हैं या पैदावार ही कम करनी होती है या जब सरकारी कीमत पर भी वस्तु नहीं बिक पाती तो उन को बाढ़ के जल

की तरह बहा देना पड़ता है। सन् १९५० ई० के जून मास तक कृषि विभाग की फसलों पर उधार देने वाली संस्था, जो किसान के उपज की कीमतों को बनाये रहने वाली संस्था है ४½ अरब डालर की कीमत के अनाज, अंडे, मक्खन, सोयाबीन आदि वस्तु या तो स्वयं खरीद चुकी थी या उन पर ऋण दे चुकी थी। इस फालतू सामान से छुटकारा पाने के लिए कृषि विभाग को विदेशों में मानो यों ही बिखेर देना पड़ा था। इस के फलस्वरूप विदेशी किसानों में रोष उत्पन्न हुआ और उन की सरकारों को प्रतिशोधात्मक कार्यवाही के लिए बाध्य होना पड़ा। अपने देश में सरकार किसानों को आधुनिक तरीकों से अधिक से अधिक आलू उत्पन्न करने को प्रोत्साहित करती रही है यद्यपि अन्त में फसल का एक बड़ा भाग सरकार को केवल नष्ट करने के लिए ही खरीदना पड़ा है। मैं मानता हूँ कि आलू खरीद कर नष्ट करने की नीति का मैंने एक असाधारण उदाहरण दिया है किन्तु इस से हमारी खेती के उद्योग के कई अन्य भागों की रुग्णता पर भी आवश्यक ही प्रकाश पड़ता है।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि हमारी खेती सम्बन्धी नीति उग्र राष्ट्रीयता के रोग का कोई अद्वितीय उदाहरण नहीं है। अन्य कई देशों में भी इसी प्रकार की आकर्षक किन्तु अन्ततोगत्वा घातक नीति का अवलम्बन किया जा रहा है। हमारी आन्तरिक खेती सम्बन्धी नीति और विदेश में बर्ती जाने वाली आर्थिक नीति में जो व्याघात है इसको हम सुलझा सकें इस दृष्टि से मैं पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हमारे समाज में किसान को भी संकटों से जिस पर उसका अपना कोई अधिकार नहीं संरक्षण पाने का उतना ही अधिकार है जितना कि कारखाने में काम करने वाले मज़दूरों को बेरोज़गारी से बचाये जाने का।

विश्व शान्ति के उपाय

प्रश्न यह नहीं है कि किसान को संरक्षण दिया जाय या नहीं, प्रश्न तो यह है कि उसको मिलने वाले संरक्षण को इस तरह कैसे कार्यान्वित किया जाय कि उसके अपने स्वार्थ और उत्तरोत्तर बढ़ने वाली देशी विदेशी मंडी में समन्वय स्थापित किया जा सके। मैं कृषि-शास्त्र का विशेषज्ञ नहीं हूँ किन्तु साधारण समझ के आधार पर यह कह सकता हूँ कि अमरीका के किसान को कीमत सम्बन्धी जो संरक्षण प्राप्त हैं उसको संसार में होने वाली घटनाओं के प्रभाव से उन्मुक्त नहीं होना चाहिए। हमारा उत्पादन ऐसा होना चाहिए जो माँग के उपयुक्त हो और इस सम्बन्ध में किया जाने वाला प्रबन्ध जितना ही स्वतः कार्यान्वित होने वाला होगा उतना ही अधिक उपयुक्त सन्तुलन स्थापित हो सकेगा।

मेरे विचार में इसी कार्य प्रणाली को हम को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अपनाना चाहिए। स्वतन्त्र देशों के ऐसे सब प्रतिनिधियों को जो कृषि सम्बन्धी हितों का प्रतिनिधित्व करते हों मिल बैठ-कर यह सोचना चाहिए कि अपनी कृषि सम्बन्धी आन्तरिक योजनाओं में किस प्रकार निरंतर ऐसा परिवर्तन करते रहें कि उन में और समस्त संसार की विस्तृत उत्पादन की आवश्यकता में सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

मेरी यह धारणा है कि इस प्रकार की कार्य प्रणाली से अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ सम्बन्धी समझौते जैसी योजनाओं की अपेक्षा अधिक अच्छा परिणाम निकलेगा। हम को विदेश व्यापार की आन्तरिक कार्यविधि से ऊपर उठ कर यह प्रयत्न करना चाहिए कि जहाँ तक कृषि उत्पादन का सम्बन्ध है संसार के स्वतंत्र देश राष्ट्रवाद को तिलांजलि दे दें।

दिन प्रतिदिन यह स्पष्ट होता जा रहा है कि कीमतों द्वारा संरक्षण की अति करने से, ऊँचे तट कर तथा आयात के “कोटे” निर्धारित करने से विदेशों में कटकर स्थिति उत्पन्न होती है, पारस्परिक खिंचाव पैदा हो जाते हैं जिन के कारण पहिले आत्मनिर्भरता की मूर्खता तथा बाद में उसी की आपत्तिजनक संतान और अतिक्रमण देखने में आते हैं। इन सब बातों के कारण जो युद्ध होते हैं, और उन में जो कुछ खर्च होता है वह हमारी खेती करने वाली जनसंख्या को प्राप्त होनेवाले अल्पकालिक लाभ से सहस्रों गुना अधिक है।

सौभाग्य वश, अमरीका की ‘अमरीकन फार्म व्यूरो फैडरेशन’, ‘नेशनल ग्रांज’, ‘फारमर्स यूनियन’ और ‘नेशनल् काउंसिल आफ फारमर कोऑपरेटिव’ के अधिकारियों से अधिक सचेत अधिकारी वर्ग कहीं देखने को नहीं मिलता। पिछले ढाई साल से मुश्किलों में इन अधिकारियों और अन्य कृषि नेताओं से मार्शल योजना के सम्बन्ध में तथा योरप की कृषि के पुनर्निर्माण और नवनिर्माण के विषय में बातचीत करने का अवसर मिला है। मुश्किलों यह देख कर संतोष हुआ कि उन्होंने ने स्वतंत्र राष्ट्रों के आर्थिक जीवन को बनाये रखने के लिए तथा और भी मजबूत बनाने वाले तथा खेती सम्बन्धी व्यापार को बढ़ाने के लिए हम ने जो साधन सोचे उन की पुष्टि की है। उन्होंने ने ऐसी नीति का समर्थन किया है जो प्रकटतः अमरीका के किसानों के तात्कालिक हितों के विरुद्ध पड़ती है किन्तु जिस पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन के वास्तविक और दीर्घकालीन हित इसी नीति के कार्यान्वित करने में निहित हैं।

इसी कारण मेरा यह विश्वास है कि हमारा कृषक वर्ग खेती की उपज की कीमत निर्धारित करने की नीति पर पुनः विचार करने को

विश्व शान्ति के उपाय

तैयार है। मुझे इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि वह ऐसे नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करेगा जिस से किसान को मौलिक संरक्षण भी प्राप्त हो और समस्त संसार में स्वतंत्र व्यवसाय की प्रवृत्तियाँ भी दृढ़ हो जायें।

यदि हम आंशिक रूप में भी उन सब दायित्वों की सूची तैयार करें जो हम को बपौती स्वरूप प्राप्त हुए हैं तो हम को पता लगेगा कि संसार के स्वतंत्र राष्ट्राँ में प्रथम स्थान पाने के सौभाग्य के साथ-साथ हम को कितना बड़ा भार भी उठाना पड़ेगा।

जिस समय मुझको आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का काम चलाना पड़ रहा था उस समय कई बार तो मुझको ऐसी इच्छा हुआ करती थी कि काश हम दोनों युद्धों के बीच के समय के एकान्तवाद को पुनः प्राप्त कर पाते। किन्तु अब पीछे कदम नहीं उठाया जा सकता। पीछे लौटने का रास्ता ही नहीं रहा। यदि हम अपने दायित्वों को पूरा करने के योग्य सिद्ध न हुए तो संसार के स्वतंत्र देशों का पतन हो जायगा। यदि ऐसा हुआ तो हम शान्ति के लिए किये जाने वाले संघर्ष में सफलता प्राप्त न कर सकने के पाप के भागी होंगे।

पाँचवाँ परिच्छेद

सैनिक मोर्चे पर शान्ति-संघर्ष

किसी अमरीकावासी के लिये रूस की सैनिक शक्ति का अनुमान लगाने का संभवतः सबसे सही और सुगम साधन यह है कि वह रूस के उस युद्ध स्मारक पर दृष्टिपात करे जो एक विचित्र व्यंग्य के रूप में वालिन के अंग्रेजी प्रदेश में स्थित है।

यह ब्रांडन वर्ग गेट और 'राइखटाग' (जर्मन पार्लमेन्ट) की ध्वस्त इमारत के निकट स्थित है। अति गंभीर मुद्रा बनाये रूसी पहरेदार इसके श्वेत द्वारों की निरन्तर देख भाल रखते हैं। जिस मार्ग द्वारा यहाँ पहुँचा जाता है उसके दोनों ओर टैंकों और तोपों का भारी जमाव है। शायद युद्ध स्मारक की रक्षा के लिए ऐसा प्रबन्ध उपयुक्त ही हो, किन्तु मुझको तो उसमें एक नया ही अर्थ दिखायी दिया।

जब पिछली बार मैंने युद्ध के इन भयंकर चिन्हों पर दृष्टि डाली तो उस समय कोरिया में युद्ध ज्वाला भड़की हुई थी और रह-रह कर मुझको विश्वास हो रहा था कि हम लोग उस समय तक शान्ति स्थापित नहीं कर सकते जब तक इन सहस्रों टैंकों और तोपों द्वारा दृष्टिगोचर होनेवाली रूस की युद्ध क्षमता का निराकरण करने के लिए हम उससे भी अधिक शक्तिसंचय न कर लें।

विश्व शान्ति के उपाय

मैं अपने आप को शान्ति का जिज्ञासू मानता हूँ। मैं रह-रह कर यह कामना किया करता हूँ कि यदि हम आर्थिक, राजनीतिक एवं अन्य अहिंसात्मक साधनों द्वारा ही शान्ति की स्थापना कर पाते तो कितना अच्छा होता। किन्तु हम सब यह अनुभव कर चुके हैं कि किसी मकान का यदि पिछला द्वार खुला छोड़ दिया जाय तो अगले द्वार में ताका डालना निष्प्रयोजन ही है। संसार के स्वतंत्र देशों को अतिक्रमण से बचा कर ही स्वतंत्र रखा जा सकता है। इस विषय में एक बार फिर अमरीका के दायित्व का उल्लेख करना पड़ता है। हमारे रक्षा विभाग को केवल यही प्रबन्ध नहीं करना कि रूस के शासक हम पर आक्रमण करने का साहस न कर सकें वरन् हमको अन्य स्वतंत्र देशों की इस दृष्टि से भी सहायता करनी है कि वे स्वयं अपनी सैनिक शक्ति को इतनी बढ़ाय कि रूस के शासक पश्चिमी योरोप या एशिया में अपनी सेना भेजने का अर्थ आत्महत्या के तुल्य समझने लगें। मैं स्वयं सैनिक विशारद नहीं हूँ किन्तु विशारदों के साथ इतनी देर तक रह चुका हूँ कि उनके कार्य की पेचीदगी को समझता हूँ। मुझको व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह भी जानकारी है कि इस प्रकार सुरक्षा के लिए धन एकाग्रित करते रहने में हमारे आर्थिक जीवन के लिए एक खतरा है।

हमारी स्थल सेना, जल सेना और हवाई सेना का प्रथम कर्तव्य अमरीका तथा उसके अधिकृत प्रदेशों की रक्षा करना ही है। इस समय संसार में जो प्रवृत्तियाँ चल रही हैं उनको देखते हुए यह कहना पड़ता है कि इस कर्तव्य को अमरीका की भूमि तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। यह विचार विल्कुल व्यर्थ है कि हमारी रक्षा का सर्वश्रेष्ठ उपाय अपने भूमिभाग की रक्षा करना ही है। आज रेपिड-सिटी

(Rapid city) के चारों ओर रेडार का जाल डालना या कियो-कुक (Keo kuk) नामक नगर के चारों ओर यान-नाशक बैटरियाँ लगाना एक दम व्यर्थ तथा खर्चीला तरीका साबित होगा । आज जब कि दूर-दूर तक उड़ कर जा सकने वाले हवाई जहाज़ हैं, अणु बम हैं; और जब कि स्वतः चलनेवाले गोले प्रयोग में आने लगे हैं, अमरीका के 'मिड-वेस्ट' प्रदेश की रक्षापंक्ति बर्लिन, टोकियो और स्पिट्स बर्गेन में होनी चाहिए ।

अपने किसी मित्र पर आक्रमण होने का अर्थ हमारे ऊपर ही आक्रमण समझा जाना चाहिए । इसलिए हमको दोहरी चुनौती देनी है । हमको अपने आपको शस्त्रास्त्र से सुसज्जित करना है और अपने मित्रों को भी, क्योंकि संसार के समस्त स्वतंत्र देशों की सीमा एक ही है । हमारी अपनी सुरक्षा का दारोमदार दूसरों की सुरक्षा पर निर्भर है । जिस समय प्रेज़ीडेन्ट जेम्स मनरो ने अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त द्वारा संसार के अन्य राष्ट्रों को यह चेतावनी दी थी कि संसार के इस भाग के किसी भी राष्ट्र के विरुद्ध होनेवाले हस्तक्षेप को अमरीका सहन नहीं करेगा तो इसी को हमारी राष्ट्रीय नीति का मुख्य अंग समझा गया था । उस समय लेटिन अमरीका (दक्षिण अमरीका) वाले पड़ोसियों से विचार विनिमय करने के लिए कोई माध्यम प्राप्त नहीं था इसलिए प्रेज़ीडेन्ट मनरो को अकेले अमरीका की ओर से ही ऐसी घोषणा करनी पड़ी थी । आज सर्व अमरीकी प्रदेश संघ (Pan American Union) के रूप में हमारे पास ऐसा एक माध्यम है और रियो (Rio) में सन् १९४७ ई. में होने वाले सम्मेलन में सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया है । अमरीका के जितने जन तन्त्रात्मक राष्ट्र हैं

विश्व शान्ति के उपाय

लिए, और सब एक संयुक्त नेतृत्व में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए खड़े हों। उत्तरी अटलांटिक सन्धि संघ पश्चिमी जर्मनी की मानवी एवं उत्पादक शक्ति के प्रयोग करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

अपने जीवन के प्रथम वर्ष में इस संस्था को संगठन सम्बन्धी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। अक्सर इसके ऊपर ऐसे बोर्ड और कमे-टियों का भार रहा जिनके कर्तव्य एक दूसरे से मिलते-जुलते थे या जिनकी स्थिति का स्पष्टीकरण पूरी तरह नहीं हो पाया था। इसकी सबसे स्पष्ट दुर्बलता अब तक यह रही है कि अभी तक इसको सर्वोच्च एकतापूर्ण नेतृत्व नहीं प्राप्त हो सका है और इससे भी अधिक सौभाग्य की बात यह है कि स्वभावतः जिसको यह काम सौंपा जाना चाहिए था उन्हीं जनरल आइजन हावर ने इस काम को पूरा करने के लिए पुनः सैनिक वर्दी पहनना स्वीकार कर लिया है। जनरल आइजन हावर में लोगों को अभिप्रेरित करने की योग्यता है, अन्य सहयोगियों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रभावपूर्ण विनम्रता है और दूसरों से काम करा सकने की ऐसी दृढ़ता है जिससे योरप की रक्षा के लिए एक योरपियन सेना का विकास किया जा सकता है। यहां हमको कुछ देर ठहर कर यह सोचना चाहिए कि सोवियट रूस के सामने खड़ा होने के लिए हमारे पास कितनी शक्ति है।

जनसंख्या की दृष्टि से हमारी स्थिति बड़ी प्रभावशाली प्रतीत नहीं होती। किन्तु कई महत्वपूर्ण बातों में हम रूस और उसके पिछुओं से कहीं आगे हैं। अमरीका सन् १९५१ ई० में प्रतिवर्ष $९\frac{1}{2}$ करोड़ टन अपरिष्कृत इस्पात पैदा करने की स्थिति में हो जायगा और पश्चिमी योरप $५\frac{1}{2}$ करोड़ टन। सोवियट रूस और उसके अधिकृत देश सम्भवतः ३ करोड़ ३० लाख टन ही इस्पात पैदा कर सकेंगे। यदि आवश्यकता

हो तो अमरीका, ६० करोड़ से लेकर ७० करोड़ टन कोयला प्रतिवर्ष पैदा कर सकेगा, पश्चिमी योरप ४५ करोड़ टन से ५० करोड़ टन तक और सोवियट रूस और उसके पिट्रू देश ४० करोड़ टन से भी कम। सन् १९५१ ई० में अमरीका ४ $\frac{१}{२}$ करोड़ टन सीमेन्ट और पश्चिमी योरप ५ करोड़ टन पैदा कर सकेंगे और सोवियट रूस और उसके अधिकृत देश १ करोड़ ३० लाख टन।

अमरीका तेल के २ अरब ३० करोड़ ढोल (Barrel) और पश्चिमी योरप २ $\frac{१}{२}$ करोड़ ढोल पैदा कर सकता है। इस के साथ यदि दक्षिणी अमरीका तथा निकट पूर्व और सुदूर पूर्व के स्वतंत्र देशों के उत्पादन को भी जोड़ दें तो २ अरब ढोल तेल और प्राप्त हो सकता है। सोवियट रूस तथा उस के पिट्रू देश सम्भवतः १९५१ ई० में ३५ करोड़ ढोल ही तैयार कर सकेंगे। अमरीका सन् १९५१ ई० में सम्भवतः ४ खरब किलोवाट बिजली तैयार करेगा और पश्चिमी योरप २ खरब ५० अरब किलोवाट बिजली और रूस तथा उस के अधिकृत देश १ खरब ४० अरब किलोवाट। औद्योगिक उत्पादन का जहाँ तक सम्बन्ध है, चाहे रेल के इंजिन बनाने का प्रश्न हो या टैक्टर बनाने का, पश्चिमी देशों की शक्ति सोवियट रूस से कहीं अधिक है। जो इन आँकड़ों को पढ़ेंगे वे यह अनुभव किये बिना न रहेंगे कि पश्चिमी योरप का इस विषय में कितना महत्वपूर्ण स्थान है। जो लोग यथार्थवादिता के नाम पर पश्चिमी योरप को उस के भाग्य पर छोड़ देना चाहते हैं उन को स्मरण रखना चाहिए कि यदि पश्चिमी योरप के समस्त साधनों पर रूस का अधिकार हो जाय तो कई आवश्यक क्षेत्रों में उस की शक्ति अमरीका के बराबर हो जायगी। मेरी राय में इस बात का इस से बड़ा और कोई प्रमाण नहीं कि शान्ति-संघर्ष में हम अकेले सफल नहीं हो सकते।

विश्व शान्ति के उपाय

हमारी औद्योगिक शक्ति तथा सैनिक शक्ति में एक प्रकार का समन्वय स्थापित हो चुका है जो व्यर्थ की बौखलाहट करने वाले लोगों को नहीं दिखायी देता। उदाहरणार्थ हम सामरिक रीति-नीति में प्रभावकारी होने वाले ऐसे शस्त्रों और तोपों के उत्पादन में जिन के गोलों में अणु शक्ति का समावेश है सब से आगे हैं। वास्तव में हम को अपनी शक्ति जितनी दिखायी देती है उस से कहीं अधिक है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसी जन शक्ति की दृष्टि से जिस को वह सैनिक शक्ति के रूप में सन्नद्ध कर चुका है, हम इस समय रूस से पीछे हैं। वह इस समय पूर्ण शिक्षाप्राप्त, सुसज्जित तथा विश्वस्त सेना के ६४ लाख आदमी मैदान में उतार सकता है जब कि गैर-कम्युनिस्ट संघ के पास ३१ लाख ७५ हजार ही ऐसे आदमी हैं और उन का भी ट्रेनिंग पूरी तरह नहीं हुआ है। किन्तु सामुद्रिक शक्ति में, जिस के निर्णयात्मक महत्व की साक्षी कोरिया के युद्ध ने की है, स्वतंत्र राष्ट्रों की स्थिति कहीं ज्यादा अच्छी है। उन की सामुद्रिक बेड़े की शक्ति ६० लाख टन है तो कम्युनिस्टों की केवल ५ लाख टन ही। गैर-कम्युनिस्ट देशों के पास ३८ हजार हवाई जहाज हैं अर्थात् सोवियट रूस से ६ हजार अधिक। यदि हम अपना ध्यान केवल पश्चिमी योरप पर तक ही सीमित रखें तो वास्तव में स्वतंत्र देशों की सैनिक दुर्बलता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली, हालैंड, बेल्जियम, डेन्मार्क, लज़्मवर्ग और अन्य राष्ट्रों ने अभी कल ही से तो पुनः सन्नद्धीकरण प्रारंभ किया है। इस समय यदि रूस चाहे तो वह पश्चिमी योरप के १ लाख सैनिकों के विरुद्ध १० लाख सैनिक और ५ हजार टैंकों के विरुद्ध ४५ हजार टैंक लड़ाई में झोंक सकता है। इस के अतिरिक्त यदि युद्ध हो तो फ्रान्स और इटली में कम्युनिस्टों का इतना असर है कि वे विस्तृत पैमाने पर

बातायात के साधनों और उद्योग-धंधों में तोड़-फोड़ करा सकते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि रूस ने अबतक अटलांटिक महासागर की ओर कदम क्यों नहीं बढ़ाया? या क्या रूस इस समय जब कि हमारी युद्ध करने की क्षमता अभी कई साल तक निम्नतर स्तर पर रहेगी हम पर आक्रमण कर देगा? मैंने इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए सारे योरप में प्रयत्न किया; मैंने श्री चर्चिल से और श्री बेविन से बात-चीत की; हालेण्ड के डर्क स्टिकर (dark stikker), इटली के गाइसेय पैला, और बेल्जियम के पालवान जीलड से विचार-विमर्श किया। उन की राय में रूस की सेना अभी निकट भविष्य में कूँच करती नहीं दिखायी देती। उन्होंने इसके जो कारण दिये हैं वे भिन्न-भिन्न हैं।

उक्त महापुरुषों में से प्रत्येक का यह विश्वास है—विशेष रूप से चर्चिल का—कि हमारे पास अणुबम का जो विशाल और श्रेष्ठतर भण्डार है और “हाइड्रोजन” बम बनाने की ओर जो हमने तेज़ी से कदम बढ़ाया है उस से रूस की आकांक्षाओं के रास्ते में प्रभावकारी रुकावट उत्पन्न हो गयी है। मैं जिस किसी से भी मिला उसी ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गयी कार्यवाही पर हर्ष प्रगट किया। रूस के शासक यह जानते हैं कि यदि उन्होंने पश्चिमी योरप में कदम बढ़ाया तो विश्व व्यापी युद्ध का सूत्रपात हो जायगा।

ये शक्ति और शक्ति संतुलन बनाये रखने वाली योजना से संबंधित बातें हैं। योरप के लोग रूसवासियों को हमारी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हैं। वे ऐसी विचारधारा सम्बन्धी रुकावटों का भी उल्लेख करते हैं जो रूस को अतिक्रमण करने से रोके हुए हैं। उनका कहना है कि रूस के शासक संसार के जनमत का तिरस्कार भले ही करते हों

विश्व शान्ति के उपाय

किन्तु उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। वे यह जानते हैं कि यदि उन्होंने पश्चिमी योरप में अतिक्रमण किया तो निश्चित रूप से संसार के स्वतन्त्र देश उनके विरुद्ध उठ खड़े होंगे। उनके इस प्रकार के नग्न और क्रूर अतिक्रमण से उनको सबसे अधिक चोट एशिया में लगेगी जहाँ कम्युनिस्ट अपने आप को राष्ट्रवादी कह कर स्वतन्त्रता सैनिक बनने का ढोंग किये हुए हैं। इस समय बहुत से हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी और बर्मा वासी कम्युनिस्टों की चालों के प्रति सहिष्णुता दिखाते हैं किन्तु ऐसी कार्यवाही के उपरान्त उनको भी रूसी साम्राज्य लिप्सा के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जायगा।

योरप वासियों का यह भी विचार है कि रूस के नेता अपने स्वार्थों के लिए इस समय बड़ी लड़ाई करना आवश्यक समझते हैं। वे अब भी मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुकूल यह धारणा बनाये हुए हैं कि पूँजीवादी देशों में अपने अन्दर ही ऐसे व्याघात छुपे हैं जो उनको तबाह कर देंगे। यद्यपि कम्युनिज्म के ज्योतिषियों की वे सब भविष्यवाणियाँ विफल हो गयीं जिनमें सन् १९४६ ई० से १९४८-४९ ई० के बीच के युग में हमारे लिये घातक खतरों का उल्लेख किया गया था—सम्भवतः ऐसी सुखद भविष्यवाणी करने वाले अधिकांश ज्योतिषी अब जेलों में पहुँच चुके हैं। मास्को में अभी तक यह विश्वास चल रहा है कि यदि कम्युनिज्म थोड़े दिन और प्रतीक्षा करे तो पूँजीवाद स्वयं ही टूट-फूट जायगा और तब उनके टुकड़ों को एक-एक करके हजम कर लेना सहज होगा। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा उन्हीं का पक्ष दृढ़ होता जायगा। किन्तु उनको यह चिन्ता है कि यदि रूस की सेनाएँ पश्चिमी योरप को पददलित करके उस पर शासन करने का यत्न करेंगी तो उस नीति के विरोध में वहाँ

जो उपद्रव तथा विप्लव होंगे उनको दबाने के लिए सीखे सिखाये आदमी मिलने मुश्किल होंगे। साथ ही रूस के शासकों को यह भी चिन्ता है कि कहीं रूस की सेनाएँ पश्चिमी योरप के अपेक्षाकृत ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की झंझा की न प्राप्त कर लें।

दूसरे विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में रूस के सैनिक यह देख कर चकित रह गये थे कि रूस की सीमा के पश्चिम में युद्धध्वस्त देशों तक में सैनिकों की जिन्दगी का माप दंड उनके अपने जीवन के माप दंड से कहीं ऊँचा था। रूस का सैनिक जब अमरीकन सैनिक की घड़ी, खाना, जूते, वर्दी, चाकलेट, सिगरेट और वेतन को देखता था तो आँखें मल-मल कर रह जाया करता था।

अन्त में स्टालिन को यह भी मालूम है कि हिटलर और मुसोलिनी के पतन का प्रधान कारण उनके द्वारा स्वतंत्र देशों पर किये गये आक्रमण से प्रारंभ हुआ महायुद्ध ही था। इस प्रकार की जोखिम उठाना स्टालिन की नीति कभी नहीं रही। वह जानता है कि अन्य दोनों तानाशाहों का विनाश उनके अपने द्वारा प्रारंभ की गयी लड़ाई में विफल होना ही था। जब युद्ध के पश्चात् रूस में एवरैल हैरीमैन हमारे राजदूत थे तो स्टालिन ने उन से एक बार क्रेमलिन में होने वाली बातचीत के बीच में कहा था कि “हिटलर की सब से बड़ी गलती यह थी कि उसने अपने आपको एक लम्बी लड़ाई में फँसा लिया।”

निस्संदेह इस प्रकार के अनुमान लगाने से यह आश्वासन नहीं होता कि रूस तृतीय विश्वयुद्ध को प्रारंभ करने से वाज़ रहेगा, न ही इस से हमारे मन में आत्म तुष्टि की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। किन्तु इससे इतनी आशा अवश्य होती है कि अभी हमारे पास कुछ साल

विश्व शान्ति के उपाय

ऐसे हैं जिनमें हम अपनी और सैनिक शक्ति को इतना बढ़ा सकते हैं कि रूस को अपनी सेना से कूँच कराने का साहस न हो ।

सैनिक विशारदों का मत है कि सन् १९५३ ई० तक हमारे पास ३० लाख से ४० लाख तक सशस्त्र सैनिक हो जायेंगे । अपने सैनिकों को हमें निरंतर युद्ध की तैयारी में रखना होगा और इनकी सहायता के लिए एक हजार जहाजों का नाविक वेड़ा और १०० टुकड़ियों का हवाई वेड़ा रखना होगा । हमको पश्चिमी योरप को कम से कम ५०० डिवीजनों की ऐसी रक्षा सेना तैयार करने में सहायता करनी चाहिए जो युद्ध छिड़ने पर रूस की सेनाओं को कम से कम तीन मास तक राइन (Rhine) नदीके उस पार रोके रह सके । ताकि इस बीच में अमरीका की भीमकाय सामरिक शक्ति प्रांगण में उतर सके । साथ ही हमको संयुक्त राष्ट्र संघ के पास भी कम से कम पाँच डिवीजनों का प्रबन्ध करा देना चाहिए और उसके लिए तीव्र गति के ऐसे वाहन दे देने चाहिए कि उनको शीघ्रातिशीघ्र संकटग्रस्त क्षेत्रों तक पहुँचाया जा सके ।

इन सब को कार्यान्वित करने के लिये अधिकाधिक रुपये की आवश्यकता है । कम से कम आगामी तीन वर्ष तक हम को ५० अरब डालर प्रतिवर्ष के हिसाब से खर्च करते रहना होगा । इस संख्या में योरप और एशिया में पारस्परिक सहायता योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली क्रमशः ६ अरब डालर और एक अरब डालर की रकमें भी सम्मिलित हैं । यदि हम जार्ज वाशिंगटन की उक्ति को चरितार्थ करना चाहते हैं अर्थात् “रक्षा स्थिति” प्राप्त करना चाहते हैं तो ये रकमें आवश्यक ही हैं । इस का अभिप्राय यह है कि हमारे पास इतनी शक्ति होनी चाहिए कि हम या तो शत्रु को आक्रमण करने ही से रोक सकें या उस

के प्रहार को घातक सिद्ध न होने दें। इस ५० अरब डालर में से लगभग १५ अरब डालर हमारी अपनी बढ़ी हुई सेना को सुसज्जित करने पर खर्च होंगे। सौभाग्यवश इस नयी सैन्य-सज्जा में से बहुत कुछ तो वही होगा जिस को व्यापारी वर्ग “बुनियादी पूँजी” (Capital outlay) कहते हैं अर्थात् उस पर बार-बार खर्च नहीं करना पड़ेगा। इस प्रकार तीसरे वर्ष में यानी जब कि हमारी सेना ‘रक्षा स्थिति’ प्राप्त कर चुकी होगी इस में प्रति वर्ष २०-२५ अरब डालर की कटौती की जा सकेगी; तब तक सम्भवतः संसार में स्थायी शान्ति भी स्थापित हो चुकी होगी।

हमारे सुरक्षा व्यय और कुल राष्ट्रीय उत्पादन में (जो सन् १९५० में २७९, ०००, ०००, ००० डालर का था) जो अनुपात है वह बढ़ा ही परिवर्तनशील है। जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ अपनी सेना पर चिरकाल तक भारी खर्च करते रहने से हमारे आर्थिक जीवन को खतरा उत्पन्न हो सकता है—मुद्रा प्रसार के रूप में या नियंत्रणों रूपी जाल के फैलने से। इसलिए हमारा सैनिक व्यय ऐसी मर्यादाओं में रहना चाहिए जिस से हमारी उत्पादन शक्ति बढ़ती रह सके—स्वतंत्र और उत्तरोत्तर प्रसारित आर्थिक व्यवस्था के आधार पर।

मेरा यह विचार है कि हम अपने रक्षा-व्यय को यदि उन्हीं सीमाओं में रख सकें जिन का मैं ऊपर सुझाव रख चुका हूँ और तीसरे वर्ष के अंत में उस में गहन परिवर्तन कर सकें तो इस से हमारे आर्थिक जीवन में कोई भयंकर संकट नहीं आयेगा। लेकिन ऐसा करने के पहले हम को अपने सेना संबंधी विचारों और खर्चों में परिवर्तन करना होगा। इस समय एक साधारण अमरीकन सैनिक को तीन डालर प्रतिदिन वेतन और डाक्टरी खर्च तथा दाँतों आदि की देख-भाल के लिए अतिरिक्त भत्ता

विश्व शान्ति के उपाय

देना पड़ता है। यह कहना गलत होगा कि उस को इस की आवश्यकता नहीं है। हमारे सैनिकों में से अधिकांश ऐसे युवक हैं जो अपनी युवा स्त्रियों तथा बच्चों के भरण-पोषण के एक मात्र अवलम्बन हैं। किन्तु यदि हम रूसी अतिक्रमण को रोकना चाहते हैं तो हम को ३० लाख सैनिकों, नाविकों, और नाविक सैनिकों तथा यान चालकों को सदा तैयारी की स्थिति में रखना होगा। हम उन को ३ डालर प्रतिदिन के हिसाब से अदा नहीं करते रह सकते (हमारी सेना के कर्नलों को तो प्रतिवर्ष ८००० डालर तक वेतन मिलता है), अन्यथा हम को उस २०-२५ अरब डालर की परिधि के बाहर निकलना होगा जिस को हम अपने आर्थिक जीवन को बिना ठेस पहुँचाए बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। इस का उत्तर व्यापक सैनिक शिक्षा है और इस को इस प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है। लगभग १८ वर्ष की अवस्था होने पर प्रत्येक नागरिक को २ वर्ष के लिये सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी अनिवार्य कर दी जाय अर्थात् पारिवारिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने से पहिले ही। उस समय उस की अच्छी देख भाल होनी चाहिए, अच्छा भोजन, वस्त्र मिलना चाहिए और संयोग वश होने वाले खर्चे के लिए लगभग एक डालर प्रतिदिन भत्ता दिया जाना चाहिए (टर्की के एक सैनिक को प्रति मास एक डालर नकद मिलता है और फ्रांस के अविवाहित कर्नल को २०० डालर प्रतिमास)। जब बीस वर्ष की आयु होने पर उस को अवकाश दिया जाय तो वह अपने काम पर वापस जा सके या अपना अध्ययन पुनः प्रारम्भ कर सके। इस प्रकार हमारे पास अच्छी शिक्षा और ट्रेनिंग प्राप्त ऐसी रिजर्व सेना हो जायगी जिनके बल पर अपनी वर्तमान सेना की संख्या को हम घटा सकेंगे।

शान्तिकाल में इस प्रकार युद्ध की शिक्षा प्राप्त करना सैन्यवाद

विरोधी अमरीका वासियों को स्वभावतः अच्छा नहीं लगता । किन्तु यदि हम उस संकट की कल्पना करें जो हमारे ढील देने से सामने मुँह फैला कर आ खड़ा हो सकता है तो यह स्पष्ट हो सकता है कि अपनी सुविधा और भाराम को बलिदान किये बिना हम और हमारी स्वाधीनता—आदर्श जीवित नहीं रह सकते ।

अपनी राष्ट्रीय भाय का एक बड़ा भाग सुरक्षा के लिए खर्च करने के लिये हम अकेले ही नहीं हैं ।

यदि सब को मिल कर सामूहिक रूप से शान्ति के लिए प्रयत्न करना है तो योरप को भी भारी व्यय करना पड़ेगा । सन् १९५१-५२ ई० में उस को उपयुक्त सैनिक रक्षा-प्रबन्ध के लिए अपने पास ही से १२-१३ अरब डालर खर्च करने पड़ेंगे ।

सौभाग्य वश जिस उल्लेखनीय गति से योरप ने अपने आप को फिर से सँभाला है उस के कारण उस के कल-कारखाने फिर से अच्छी तरह काम करने लगे हैं, मशीनें चलने लगीं हैं और शीघ्र ही युद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में तैयार होने लगेली । बिना मार्शल योजना के पश्चिमी योरप के हमारे मित्र इतना प्रभाव-पूर्ण पुनः सशस्त्रीकरण करने की स्थिति में नहीं थे । इस कारण से तथा आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने के लिए हम को पुनः निर्माण के सब कार्यों में सहायता देते रहना चाहिए विशेषतः ऐसे कामों को जिन को वे इस समय हाथ में लिये हुए हैं । अन्यथा परिणाम यह होगा कि इस्पात के कारखाने और बिजली पैदा करने वाली योजनाएँ अधूरी ही पड़ी रहेंगी और उसी परिमाण में पश्चिमी योरप के लोग अपने शस्त्र स्वयं बना सकने में असमर्थ रहेंगे । इस विषय में मैं उन लोगों की बातें सुन कर चकित रह जाता हूँ जो आर्थिक शक्ति तथा सैनिक शक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को नहीं सम-

विश्व शान्ति के उपाय

झते । कुछ ऐसे लोग जो अन्यथा काफ़ी समझदार हैं यह सोचते हैं कि “बजूका” (टैंक तोड़ने वाली तोप) टैंक, हवाई जहाज़, क्रूज़र मानो ऐसे ही प्राप्त हो सकते हैं जैसे आँधी के आम । वे यह नहीं समझते कि बन्दूक उसी समय तक चल सकती है जब तक कि उस के कारतूस मिलते रहें; और कारतूस और बारूद कारखानों में बनते हैं । किन्तु स्टालिन इस बात को खूब जानता है । “उत्पादन से ही विजय होती है” यह सुना है उस की प्रिय कहावतों में से है ।

इस में कोई सन्देह नहीं कि मार्शल योजना का अभिप्राय पश्चिमी योरप को युद्ध सामग्री पैदा करने में सहायता देना नहीं था । मार्शल योजना का मूल अभिप्राय यह था कि समस्त योरप में स्थाई और प्रगतिशील आर्थिक जीवन का संचार हो सके ताकि अन्त में समस्त संसार में ऐसा ही आर्थिक जीवन संगठित करने की ओर एक बड़ा क़दम उठाया जा सके । किन्तु जब आरंभ से ही सोवियट रूस ने इस योजना में भाग लेने से इनकार कर दिया तो इस के अन्तर्गत प्रारंभ किये जाने वाले कार्यक्रमों को पश्चिमी योरप और अन्य गैर-कम्युनिस्ट क्षेत्रों तक ही सीमित रखना पड़ा । अब इधर क्यों कि सोवियट रूस के युद्धात्मक साम्राज्यवादी उद्देश्य निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो गये हैं तो विवश हो कर और अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए पश्चिमी योरप को अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ-साथ बड़े पैमानों पर रक्षा प्रबंध करने की सोचनी पड़ी है । मार्शल योजना से पश्चिमी योरप के आर्थिक जीवन को स्वस्थ बनाने में और विकसित करने में जो सहायता मिली है और उस से सैनिक सामग्री के उत्पादन का जो अनिवार्य आधार तैयार हो गया है उस का उदाहरण उस स्वतः चलने वाली तोप से मिलता है जिस को फ्रांस वाले तैयार कर रहे हैं । इस के बनाने के लिए आवश्यकता है

इस्पात, सीसा, पेट्रोल, वाल्वेयरिंग की और इन के पीछे काम कर रही हैं चहर तैयार करने वाली मिलें, खानों से कोयला निकालने वाली मशीनें, रेलवे लाइन, रेलवे इंजिन और इसी प्रकार की अन्य औद्योगिक सामग्री और सुविधाएँ ।

इस्पात का ही उदाहरण ले लीजिये। सन् १९४५ में फ्रांस और सार (Saar) में इस्पात का उत्पादन गिरते-गिरते १५ लाख टन रह गया था किन्तु आज मार्शल योजना की सहायता से इस का उत्पादन १ करोड़ टन हो गया है, अर्थात् ८५ लाख टन अधिक, और अभी इस की उत्पादन क्षमता को और भी तेज़ी से बढ़ाया जा रहा है ताकि अन्य वस्तुओं के साथ वह तोपों की नालें भी तैयार कर सके । इसी प्रकार सन् १९५० ई० में फ्रांस ३½ लाख मोटर कार और ट्रक बना सका था । यह संख्या युद्ध से पहले की संख्या से दुगुनी थी और इन्हीं कारखानों में थोड़ा सा परिवर्तन करने से स्वतः चलने वाली तोपों के एंजिन और ढाँचे तैयार किये जा सकते हैं । होते सवोय (Haute Savoie) में मार्शल योजना के अन्तर्गत जो नया कारखाना बनाया गया है उस में भी इसी प्रकार बाल वैयरिंग और तोप के अन्य हिस्से बनाये जा सकते हैं । मार्शल योजना के अमल में आने से फ्रान्स ने अपने टायरों के उत्पादन को प्रायः दुगुना कर लिया है क्योंकि अब वह “कार्बन ब्लैक” और वह मशीनरी मँगा सकता है जिस से तोपों के बड़े टायर ढाले जाते हैं । इस के लिए जो तेल आदि की आवश्यकता होती है उस को भी फ्रांस पूरी कर सकता है क्योंकि इस समय वह दूसरे विश्व युद्ध के पहले की अपेक्षा दो गुना अधिक पेट्रोल परिष्कृत करता है । गोलों के खोल और तोपों में लगाने वाले अन्य पुर्जे आंशिक रूप से मो रो को की उस खान से प्राप्त होंगे जो मार्शल योजना के अधीन वहाँ तैयार की गई है और

विश्व शान्ति के उपाय

जिस में इस समय ८१ हजार टन सीसा और एक लाख बीस हजार टन ताँबा प्रति वर्ष मिलता है। इसी प्रकार कपड़े की मिलों को लीजिए जो तोपों के लिए आवरण तैयार करती हैं या कोयले की खानों को जो इस्पात के कारखानों तथा भट्टियों के लिए अधिक अच्छे ढंग से कोयला तैयार करती हैं या उन इंजनों को लीजिए जो बिजली तैयार करते हैं जिन से लेथ, ड्रिल और “पंच प्रेस” चलाये जाते हैं, सभी किसी न किसी रूप में मार्शल योजना द्वारा किये गये पुनरुत्थान ही का परिणाम है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि फ्रांस या अन्य पश्चिमी योरोपीय राष्ट्रों की सैनिक सामग्री की उत्पादन-शक्ति में जो महत्व पूर्ण वृद्धि हुई है वह मार्शल योजना का ही अप्रत्यक्ष फल और अतिरिक्त लाभ है, यद्यपि मार्शल योजना का प्रारम्भिक अभिप्राय यह नहीं था।

किन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि योरोप निवासी कहाँ तक लड़ने को तैयार हैं। इस प्रश्न पर अधिकांश अमरीका वासी चिंता प्रकट करते हैं और इस की मुक्ति को भी चिंता है। २५ वर्ष में दो विश्व युद्ध लड़ने के पश्चात् और १९१९ के आंतरिक कलह के बाद नाजीज्म, फाशीज्म और कम्युनिज्म के अनुभवों के पश्चात्, बमों की मार और शत्रु द्वारा पद दलित होने के पश्चात् और भविष्य के प्रति अविश्वास होने के कारण क्या उन की इच्छा शक्ति दुर्बल नहीं पड़ गयी है ?

योरोप में लाखों ऐसे व्यक्ति हैं जो यह अनुभव करते हैं कि वे दो दानधों के बीच में आ गये हैं—एक ओर अमरीका है और दूसरी ओर रूस। उन को यह भी आशंका है कि उन के देश ही को पुनः युद्ध क्षेत्र बनना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में क्या उन को “तटस्थता के चरित्र-हीन सिद्धान्त का मोह नहीं होता” जिस के चिह्न फ्रांस तथा अन्य देशों में मिलते हैं ?

नारवे से लेकर टर्की तक मैं जहाँ भी गया हूँ मैं इन चिन्ता जनक प्रश्नों का उत्तर खोजता रहा हूँ। कहीं भी मुझ को इस का निश्चयात्मक उत्तर नहीं मिला। किन्तु एक बात के विषय में मुझे कोई भी सन्देह नहीं; कोई भी योरप वासी—जिन में मैं जर्मनी के युंकारो (Junkars) को भी शामिल करता हूँ—यह इच्छा नहीं रखता कि हम नया अतिक्रमण प्रारम्भ करें। उन के हृदय में युद्ध के विचार मात्र के प्रति ग्लानि है। जिन्होंने छः वर्ष के लिए निरंतर युद्ध के पदचात् सन् १९४५ ई. में वहाँ विनाश और ध्वंस के चित्र देखे हैं वे समझ सकते हैं कि ऐसा क्यों है।

अतिक्रमण का विरोध करना दूसरी बात है। मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि सोवियट क्षेत्र के निकटवर्ती देशों में भी अधिकांश लोग अपने घरों की रक्षा के लिए लड़ने और जान देने को तैयार हैं। उन को किसी प्रकार का भ्रम नहीं है। वे जानते हैं कि यदि उन पर रूस का आधिपत्य हो गया तो उस का अर्थ उन के लिए पतन और दासता होगा, जिस की अपेक्षा उन को मौत कहीं अच्छी लगती है। मैं ने अपनी आँखों से यूनान, टर्की, पश्चिमी बर्लिन और नारवे में इस प्रकार के दृढ़ निश्चय की झलक देखी है। मुझ को फिनलैंड से भी ऐसे ही विश्वसनीय समाचार मिले हैं। उन समाचारों से पता चलता है कि फिनलैंड वासी रूसी भालू के पहलू में सब से बड़ी कटार है। मैं ने नारवे के मंत्रिमंडल के एक अधिकारी से पूछा था कि “फिनलैंड वासी जो सोवियट रूस के इतने भयंकर रूप से निकट हैं, और जो कभी कम्युनिज्म के प्रति अपनी घृणा को छिपाते तक नहीं तथा जिन्होंने इतना साहस दिखाया था कि अपने मंत्रिमंडल से कम्युनिस्ट मन्त्रियों को निकाल दिया, किस तरह अपनी स्वाधीनता को बनाये हुए हैं ?”

विश्व शान्ति के उपाय

उन्होंने बताया कि फिनलैंड वासी उस बिच्छू के पेड़ की तरह हैं जिस को नारवे में (Brennenesle) और आप की भाषा में (Hettle) कहते हैं, जिस को स्पर्श करने से ही उस की कठोरता एवं कटुता का पता लग जाता है । रूसी यह जानते हैं और इसी लिए उन को छूते तक नहीं ।

सम्भवतः फिनलैंड वासियों की तरह योरप के अन्य किसी देश के लोग इतने दृढ़ नहीं हैं । किन्तु समस्त योरप में अधिकतर ऐसे ही व्यक्ति हैं जो अपने पैरों पर खड़े हुए लड़ते हुए मर जाना चाहेंगे, घुटने टेक कर जीना नहीं । हमको उनके इस विचार का औचित्य सिद्ध कर देना है कि अमरीका युद्ध को रोकने के बहाने युद्ध छेड़ने की भयंकर भूल कभी न करेगा । और जब रूस के शासक यह देखेंगे कि पश्चिम के सभी देश संयुक्त हो गए हैं तो वे अति क्रमणात्मक युद्ध प्रारंभ करने का साहस ही नहीं करेंगे ।

दोनों ही दिशाओं से आशाप्रद समाचार मिल रहे हैं । योरप वासियों को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि हम सच्ची लगन के साथ अपनी रक्षा का प्रबंध और युद्ध टलवाने का प्रयत्न कर रहे हैं, जार्ज मार्शल के रक्षा मन्त्री बनाये जाने से अधिक अच्छा प्रमाण और कोई नहीं हो सकता । द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में उन्होंने जो नेतृत्व किया उसको स्मरण कर के उन के हृदय में स्फूर्ति आ जाती है । वे यह समझते हैं—उन का ऐसा समझना सही भी है—कि जार्ज मार्शल सैनिक दृष्टि से ऐसे प्रतिभा-शाली व्यक्ति हैं कि वे सामान्य सुरक्षा का निर्माण और संचालन कर सकते हैं । साथ ही वे उन की ओर इसलिए भी श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखते हैं कि उन्होंने ही तो शान्ति स्थापन के कार्यक्रम के लिए मार्शल योजना की नींव डाली थी । जिस प्रकार जार्ज मार्शल ने भान्त-

रिक कम्युनिस्ट-अतिक्रमण का निराकरण करने के लिए आर्थिक नीति की कल्पना की थी उसी प्रकार वह वाह्य कम्युनिस्ट अतिक्रमण को रोकने के लिए सैनिक शक्ति का संयोजन भी कर सकते हैं, ऐसा योरोपवालों का विश्वास है ।

मेरा निश्चित मत यह है यदि हम अपनी रक्षा का समुचित प्रबंध कर लें, योरप को आर्थिक और सैनिक सहायता प्रदान करते रहें और जैसा कि प्रेज़ीडेंट ट्रूमैन प्रत्येक अवसर पर कहा करते हैं वैसे ही हम यह स्पष्ट कर दें कि हमारा अभीष्ट शान्ति है तो निश्चय ही योरपवासी हमारे साथ कंधे से कंधा मिला कर खड़े होंगे और आवश्यकता पड़ी तो लड़ेंगे और अन्त में विजयी होंगे ।

छठा परिच्छेद

आर्थिक मोर्चे पर शान्ति-संघर्ष

आज स्वतंत्रता और तानाशाही के बीच जो संघर्ष चल रहा है वह वास्तव में अमरीका की रचनात्मक नीति और कम्युनिस्टों की ध्वंसात्मक नीति का ही संघर्ष है। इस क्षेत्र में शान्ति-संघर्ष के लिए अमरीका का सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रयोग “आर्थिक सहयोग संचालन संस्था” रही है। इस की गतिविधि को चलाये रखने के लिए अमरीकी जनता ने कांग्रेस द्वारा १२ अरब डालर योरप के पुनरुत्थान के लिए, २ अरब ३० करोड़ डालर कोरिया के लिए और २७½ करोड़ शेष एशिया के लिए प्रदान किए हैं।

मेरे अपने पिछले २½ वर्ष के जीवन में “आर्थिक सहयोग संचालन संस्था” एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिच्छेद रही है। इस परिच्छेद का प्रारंभ अप्रैल सन् १९४८ ई० के उस आभापूर्ण दिवस को हुआ जब हम ने वाशिंगटन के स्टेंडलर होटल के कमरे नं० W—९०० में कार्य-बाही का श्रीगणेश किया। उस को पूरा करने के लिए हम को प्रथम कुछ सप्ताहों में उच्चतम प्रतिभा के ऐसे व्यक्तियों की खोज के लिए दौड़-धूप करनी पड़ी जो इस योजना को कार्यान्वित कर सकें। इस समय में हम को कई बार ऐसे संकटों से भी गुजरना पड़ा जिन्होंने

हम को काफी व्यथित रक्खा, तो कभी विजय और उल्लास की घड़ियाँ भी देखने को मिलीं। यह प्रकरण सन् १९५० ई० के अक्टूबर मास के उस दिन समाप्त हो गया जिस दिन मैं अपने योरप के अन्तिम दौरे से लौटा और अपने (Maotico) नामक भवन वाले कार्यालय में जा कर अपने कागज सौंप आया।

मेरी यह अभिलाषा थी कि मैं पाठकों के सम्मुख “आर्थिक सहयोग संचालन संस्था” का विविध घृतान्तरूपी चित्र रखूँ मेरे लिए और उन सहस्रों व्यक्तियों के लिए जो एक धार्मिक प्रेरणा और लगन के साथ इस कार्य में लग गये थे और जिन्होंने “नौकर शाह” (Beaurocrat) जैसे शब्द को भी एक गर्व करने योग्य शब्द बना दिया तथा उन करोड़ों योरप वासियों के लिए जिन को अमरीका की इस सहायता से आशा, अवसर और पुनः जीवन प्राप्त हो सका, कैसा भव्यशाली एवं कैसा प्रोत्साहन पूर्ण चित्र है यह। दुर्भाग्य वश मैं इस पुस्तक को आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के उन्हीं अंगों तक सीमित रखने को बाध्य हूँ जिन से उन बड़े-बड़े सिद्धान्तों पर प्रकाश पड़ता है, जिन के सहारे हम भविष्य में विदेशी सहायता योजानों द्वारा शान्ति-संघर्ष की दीप-शिखा प्रज्वलित रखना चाहते हैं।

“आर्थिक सहयोग संचालन संस्था” से मुझ को क्या नसीहत मिली है इस का उल्लेख करने के पहले उन लोगों के सहायतार्थ जिन को सन् १९४८ ई० की सनसनी पूर्ण घटनाओं की भली प्रकार याद नहीं रही, हम को यह बताना होगा कि हम ने उन समस्याओं का, जो पुकार पुकार कर संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही थीं किस तरह सामना किया।

सन् १९४८ पश्चिमी योरप के लिए जीवन-मरण का प्रश्न ले कर

विश्व शान्ति के उपाय

आया था। उस को रूस के शासकों द्वारा फैलाये गये षड्यंत्र का डर लगा हुआ था। ब्रिटेन के विदेश मन्त्री श्री अर्नेस्ट बेविन जैसे अधिकारी का कहना था कि उस समय पश्चिमी योरप धराशायी हुआ चाहता था और जानकार सम्वाददाताओं की भी यह भविष्यवाणी थी कि पश्चिमी योरप कुछ महीने—सम्भवतः कुछ सप्ताहों में ही रूस के अधिकार में चला जायगा।

इस प्रकार की निराशापूर्ण भविष्य वाणियाँ अकारण ही न थीं। रूसी आधिपत्य की रक्तमय तरंगों उसकी सीमाओं से उठती हुई पश्चिम की ओर बढ़ी आ रही थीं। चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, हंगरी, बल्गेरिया और रूमानिया प्रभृति राष्ट्र अपने स्वतंत्र अस्तित्व का गँवा बैठे थे। फ्रान्स, इटली और जर्मनी में रूस की ओर से अनेक देशद्रोही बड़े जोर-शोर से काम करने में लगे थे। इन सभी देशों में कम्युनिस्टों की घातक शक्ति बढ़ती जा रही थी। वे इन देशों के लाखों भूखे, बेबस और बेकार लोगों की अवस्था से लाभ उठाने के लिये प्रयत्नशाल थे। इन देशों के ध्वस्त कारखाने काम करते थे तो एक रुग्ण व्यक्ति का पड़ने वाले दौरों की तरह—कभी काम शुरू हो गया, तो कभी बन्द हो गया। कभी कच्चे माल की कमी थी तो कभी मरम्मत के सामान की। किसान जो कुछ पैदा करता वह उसके पेट भरने को ही काफी न था। यातायात की दशा इतनी शोचनीय थी कि आवश्यकता के समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ तक पहुँचाना मुश्किल था। किसानों का देश की मुद्रा पर भरासा नहीं रहा था इसीलिए वे अपनी पैदावार बेचने को तैयार न थे। मानो ये सब कठिनाइयाँ कुछ कम थीं; पश्चिमी योरप पर एक और नया संकट आ गया—रूस के आतंक से

डर कर पूर्वी योरप के लाखों नर-नारी घर-बार छोड़ कर यहाँ भाग आए।

ऐसा जीवन था सन् १९४८ ई. में योरप में।

आज केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन तीन सालों में योरप की उत्पादक शक्ति अपने युद्ध के पूर्व स्तर पर ही नहीं उससे भी ४० प्रतिशत ऊपर उठ गयी है। कच्चे इस्पात का उत्पादन २५ प्रतिशत, मोटर गाड़ियों का उत्पादन ८७ प्रतिशत और सूत का उत्पादन ३३ प्रतिशत बढ़ गया है। सन् १९५० ई. में किसानों की फसलें असाधारण रूप से अच्छी थीं और उन के जानवरों की संख्या युद्ध के पहले जितनी ही हो गई है। मार्शल योजना के प्रारंभ होने के पहले जो कृषि-उत्पादन था अब उस में ६ प्रतिशत वृद्धि हो गयी है। बिजली का उत्पादन ९५ प्रतिशत बढ़ गया है, और योरप में फिर रेलगाड़ियाँ चलने लगीं हैं। विभिन्न देशों की मुद्रायें स्थायित्व प्राप्त कर चुकी हैं, लोगों को नियम पूर्वक भोजन मिलता है और वे कठिन परिश्रम करने लगे हैं। यदि कोई कहे कि यूरोप की स्थिति ऐसी नहीं है, तो उसकी बात को सच न मानिए। कुछ लोग योरप के इस पुनरुत्थान को उसके इतिहास का सब अधिक महत्वपूर्ण परिच्छेद मानते हैं। मैं इस मत का समर्थन करता हूँ।

योरप के इस पुनरुत्थान से मैं चार बड़े परिणाम निकालता हूँ और उनको भविष्य की प्रगति का मार्ग-सूचक मानता हूँ।

हम केवल उन्हीं की सहायता कर सकते हैं जो स्वयं अपनी सहायता करना चाहते हैं। शुरू के उन दिनों में भी; जब कि इस योजना को बनाये हुए और इसको कार्यान्वित करने के लिए दौड़ धूप में लगे थे हम उन सब लोगों में जिनके जिम्मे आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का काम सौंपा गया था, एक महत्वपूर्ण विषय पर मतैक्य था। वह बात थी इस कार्य का आकार-प्रकार। जनरल मार्शल ने हार्वर्ड में कहा

विश्व शान्ति के उपाय

था कि “योरप को आर्थिक दृष्टि से पुनः अपने पावों पर खड़ा करने के लिए हमारी सरकार स्वयं ही कोई योजना बना डाले, तो न यह उचित ही होगा और न प्रभावकारी ही। ऐसी योजना बनाना तो स्वयं योरप वालों ही का काम है .. इस देश को तो केवल इतना ही करना है कि योरपीय योजना बनवाने में एक मित्र के नाते सहयोग दे और बाद में उस योजना को कार्यान्वित करने में जहाँ तक सम्भव हो सके सहायता करे।” उन के यह महत्वपूर्ण शब्द हमारे लिए शास्त्रोक्ति थे। “केवल योरपवासी ही योरप की रक्षा कर सकते हैं।” आर्थिक सहयोग संचालन संस्था को चलाने वाले लोगों ने कभी भी इस विचार को नहीं छोड़ा कि जो लोग सहायता प्राप्त करते हैं उन्हीं का यह दायित्व है कि वे इस सहायता को प्रभावान्वित करें और इस से अधिक से अधिक लाभ उठाएँ।

इस विचार को व्यवहार में लाने में हमको आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की उस धारा से बढ़ी सहायता मिली है जिस का कॉंग्रेस ने मार्शल योजना की यूरोपीय ‘प्रतिमूर्ति’ के रूप में आयोजन किया था। कॉंग्रेस ने सोच-विचार कर इस सुखद प्रस्ताव को जन्म दिया था या केवल अपने पैसे के लिये समुचित संरक्षण प्राप्त करने के लिये ही ऐसा किया था, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु मैं यह स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि जहाँ दुर्बल सरकारें थीं वहाँ इसी प्रस्ताव के कारण मार्शल योजना की सम्भाव्य विफलता सफलता में बदली और जहाँ मजबूत सरकारें थीं वहाँ प्रगति और भी तीव्र गति से हुई। मेरी राय में कॉंग्रेस के इस प्रस्ताव ने सोने में सुहागे का काम किया है।

संक्षेप में इस “प्रतिमूर्ति” प्रस्ताव का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। मार्शल योजना के द्वारा आर्थिक सहायता

पानेवाले समस्त देशों से यह आग्रह किया गया था कि प्रत्येक अमरीकन डालर के उत्तर में उनको भी अपनी-अपनी मुद्राओं में उतनी ही रकम का प्रबंध करना होगा। उदाहरण के लिए मार्शल योजना के अनुसार ब्रिटेन, फ्रांस और इटली को क्रमशः जितने डालरों की सहायता मिले इन देशों को पौंड, फ्रांक और उतनी ही बड़ी रकमों का प्रबंध स्वयं करना चाहिये। इस प्रकार एकत्रित की गयी रकमों का पाँच प्रतिशत भाग अमरीका की सरकार के हवाले कर दिया जाना चाहिए। इस रकम से अमरीका की सरकार उन विभिन्न शिष्ट मंडलों का जो आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की देखरेख के लिए विभिन्न देशों को भेजे जायँ खर्च पूरा करेगी तथा ऐसी सामग्रियों को प्राप्त करने का प्रबंध करेगी जिन को अमरीका संभाव्य संकट समाधान के लिए आवश्यक समझे। शेष ६५ प्रतिशत रकम को मार्शल सहायता प्राप्त करने वाले देशों को आर्थिक सहयोग संचालन संस्था द्वारा स्वीकृत विकास योजनाओं को पूरा करने में व्यय करना चाहिए। ऐसा ही हुआ और इस से दोहरा लाभ हुआ। एक ओर तो इन देशों को ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होने लगी जिनकी उन को आवश्यकता थी; दूसरी ओर सम्बन्धित देशों को अपने आर्थिक जीवन को पुनः संगठित करने का अवसर प्राप्त हो गया—वास्तव में मार्शल योजना की यह योरोपीय प्रतिमूर्ति उस रकम ही का दूसरा नाम है जो इन विभिन्न देशों को अमरीका से प्राप्त सामग्रियों को अपने-अपने देशवासियों को व्यक्तिगत रूप से बेचने से उपलब्ध हुई। उदाहरणार्थ यदि मार्शल योजना के अधीन किसी देशको ट्रक या खरादें दी गईं तो उनको व्यक्तिगत खरीदारों को बेच दिया गया। इस प्रकार जो रकम वसूळ हुई उसी को “प्रतिमूर्ति निधि” (“Counterpart” Fund) कहा गया।

यदि किसी को इस प्रकार का प्रबंध आर्थिक दृष्टि से विडम्बना ही दिखायी दे तो उस को इस के व्यावहारिक रूप पर दृष्टि डालनी चाहिए । फ्रांस ने अपने कपड़े के उद्योग में अति साहसपूर्ण पुनरुत्थान किया था— युद्ध के पहले उस का जो उत्पादन था, वह उस का ८० प्रतिशत बनाने लगा था । तब उस को कच्चे माल की कमी पड़ गयी । मार्शल योजना के पहले रूई न मिलने के कारण फ्रांस के मिल मालिक अपने कारखाने बन्द करने की सोच रहे थे । फ्रांस के मिल मालिकों के पास “फ्रांकों” की कमी न थी किन्तु अमरीकी कपास उगाने वाले इस मुद्रा को स्वीकार नहीं करते थे । जब मार्शल योजना का प्रादुर्भाव हुआ तो फ्रांस के मिल मालिक अपने-अपने फ्रांक ले कर अपने देश के विदेशी मुद्रा विनिमय कार्यालय में जाने लगे और यदि उनकी योजनाओं को आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अधिकारियों ने ठीक समझा तो उन को इन फ्रांकों के बदले में डालर मिलने लगे जिस से वे अमरीका से रूई खरीद कर अपने कारखानों को चलता रख सकें । किन्तु आप पूछेंगे कि उन फ्रांकों का क्या हुआ ? ये फ्रांक फ्रान्स की पुनरुत्थान निधि (Recovery Fund) में चले गये और मार्शल योजना की “प्रतिमूर्ति निधि” में जमा होने लगे । उनके द्वारा सड़कें बनायी जाने लगीं, दल-दल को साफ़ कर के खेती के लिए नयी भूमियाँ बमने लगीं तथा अन्य उपयोगी काम होने लगे ।

परिणाम क्या हुआ ? अमरीका से प्राप्त होने वाले डालरों के द्वारा फ्रांस की मिलें चलती रहीं और सहस्रों मजदूर काम पर लगे रहे तथा फ्रांस की सरकार का पुनर्निर्माण सम्बन्धी योजनाओं को पूरा करने के लिए गठरियों रुपया मिल गया । फ्रांस के कम्युनिस्टों को बेकारी से उत्पन्न होने वाले असंतोष का अनुचित लाभ उठाने का अवसर न मिल

सका। सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि क्यों कि फ्रांस के मिल मालिकों ने जो रूई खरीदी थी उसकी कीमत अपने पास से दी थी, इस लिए जितनी आवश्यकता थी उतनी ही रूई उन्होंने ली। इस से जैसा कि ऐसी दानरूपी योजनाओं में बहुधा हो जाया करता है, अपव्यय नहीं हो सका।

सहायता में दिये गये ढालरों का उपयोग—अधिकांश अमरीका-वासी यह जानते हैं कि हम प्रथम विश्व युद्ध के अन्त से लेकर आज तक बड़ी बड़ी रकमों द्वारा योरप की सहायता करते रहे हैं।

सन् १९४७ ई० में कांग्रेस के सामने योरप को नयी सहायता देने की समस्या पेश थी किन्तु इस बार कांग्रेस अधिक सही और अधिक दृढ़ आधार पर इस सहायता योजना का निर्माण करना चाहती थी। इसलिए कांग्रेस ने इसी ध्येय को मार्शल योजना सम्बन्धी कानून बनाते समय ध्यान में रक्खा। मेरे विचार में कांग्रेस के प्रयत्नों को आशातीत सफलता मिली। इसका ठोस कारण था मैसाचुसेट के श्री क्रिश्चियन ए हर्टर तथा उनके सहयोगियों ने इस समस्या का योरप में विस्तृत भ्रमण कर के भली प्रकार अध्ययन कर लिया था। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के लिए कांग्रेस ने जो कानून पास किया वह स्वयं उन अनेक गवाहियों पर आश्रित था जिन की चर्चा देर तक कांग्रेस में होती रही थी—इस प्रकार की गवाहियों से ऐसी पाँच पुस्तकें भर चुकी थीं जिन की पृष्ठ संख्या कुल मिला कर ६५८४ होती थी। अन्त में जब इन सैकड़ों आवश्यक किन्तु थका देने वाली सुनवाईयों और सम्मेलनों के बाद यह कानून बना तो इस की धाराओं में योरपीय देशों के लिए एक यह आदेश भी सम्मिलित था जिसमें उनसे कहा गया था कि (१) वे अपनी आवश्यकताओं की विस्तृत योजनाएँ पेश करें, (२)

विश्व शान्ति के उपाय

आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अधिकारियों से अपने-अपने देशों की व्यापार और आयात-निर्यात कर सम्बन्धी नीति के विषय में विचार-विमर्श करें और (३) आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अधिकारियों को यह अधिकार दें कि वे पूरी तरह यह जाँच-पड़ताल कर सकें कि इन देशों को जो आर्थिक सहायता दी गयी है उस का ठीक-ठीक उपयोग हो रहा है या नहीं। इस कानून में जिस नये सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है वह वही है जिस को मैं 'संचालित डालर' (guided dollar) के नाम से पुकारता हूँ। यदि कोई यह शिकायत करे कि इस प्रकार की धाराएँ स्वेच्छाचारी तथा उदारताहीन हैं तो मैं उन से केवल यही कहूँगा कि एक साधारण उधार देने वाला बैंक जिस प्रकार की सावधानी बरतता है इन धाराओं का प्रभाव उस से ज्यादा बुरा नहीं हो सकता। हाँ साधारण बैंक की नीति को इस कानून के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय पद अवश्य प्राप्त हो गया। मैं यह नहीं कहता कि साधारण बैंक जिस प्रकार की नीति व्यवहार में लाते हैं वह बड़ी उदारतापूर्ण होती है। इस धारा का स्पष्टीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है। मान लीजिए एक अच्छा मित्र अपने पड़ोसी की किसी व्यापारिक योजना की आर्थिक सहायता करने को तैयार है; किन्तु रुपया देने के पहले वह यह जान लेना चाहता है कि पड़ोसी की योजना बुद्धि संगत भी है या नहीं, साथ ही वह समय-समय पर यह देखने का अवसर भी चाहता है कि वह योजना विशेष ठीक-ठीक चल भी रही है या नहीं।

इटली ने जिस प्रकार फिर से अपने पाँव जमाए हैं उसके संक्षिप्त इतिहास से हमको 'संचालित डालरों' के सिद्धान्त के उपयोग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मिल जाता है।

जब युद्ध समाप्त हुआ तो इटली के सिर पर जितना बोझ था उस की तुलना जान बुनियात के प्रसिद्ध नायक के बोझ से भी नहीं की जा सकती। सौभाग्य से अमरीका की ओर से मार्शल योजना के पहले ही उसको कुछ अन्तरिम सहायता मिल चुकी थी। वास्तव में हमारे योग्य राजदूत जेम्स डून (James Dun) की देख-रेख में चलाए जाने वाले इस अन्तरिम सहायता कार्यक्रम को ही इस बात का श्रेय था कि अप्रैल सन् १९४८ ई० के निर्वाचन में इटली को कम्युनिज्म से बचाया जा सका। बाद में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अध्यक्ष जेम्स जेलर बाख जब अपने सहयोगियों के साथ इटली पहुँचे तो उनको इटली की साम्प्रतिक आवश्यकता का पता लगाने के लिए विस्तृत विचार-विमर्श और सम्मेलनों की आवश्यकता नहीं पड़ी। लगभग बीस वर्ष तक इटालियन जाति मुसोलिनी की रोमन सम्राटों में प्रथम स्थान पाने की उन्माद पूर्ण आकांक्षा को पूरा करने के प्रयत्न में थक चुकी थी। फिर रोम-बर्लिन धुरी के सदस्य होने के नाते उसको द्वितीय विश्व-युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा था। वह अफ्रीका रणक्षेत्र में मार खा चुका था; जर्मनों द्वारा अधिकृत हो चुका था; बाद में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं द्वारा पदाक्रान्त होने का अनुभव भी कर चुका था। उसके नगर और कारखाने बमों और तोपों के गोलों से ध्वस्त हो चुके थे। इस सब का जो परिणाम हुआ उसको जानने के लिए इटली के नर-नारियों के मांस-हीन चेहरों, क्लान्त शरीरों और बिना भाग के चूल्हों और खाली पड़ी रसोइयों की ओर दृष्टिपात करना भर पर्याप्त था।

उनको योजना तथा प्रश्रय की आवश्यकता थी। हमने उन के पास कोयला और गेहूँ भिजवाया। जो कारखाने अभी तक किसी तरह

विश्व शान्ति के उपाय

बचे रह गये थे उन के लिए कच्चे माल की व्यवस्था की। हम ने उन को रुई दी, इस्पात दिया, तौबा दिया।

साथ ही उसके राष्ट्रीय पुनर्जीवन एवं पुनर्निर्माण के लिए विस्तृत योजनाओं पर काम आरंभ कर दिया गया। पूरा पूरा अध्ययन करने के पश्चात् आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अधिकारियों और इटली की सरकार ने मिल कर एक व्यापक पुनरुत्थान योजना तैयार की जिस की मुख्य बातें तीन थीं—(१) जले हुए कारखानों के लिए मशीन, (२) मशीनों को चलाने के लिए बिजली, (३) खेती के लिए अधिक भूमि और खेती करने के उन्नत साधनों की प्राप्ति करना।

नयी मशीनें प्राप्त करने की आवश्यकता स्पष्ट थी। किसी कारखाने में प्रेस, करवे, 'फोर्ज' आदि अन्य जिन कल-पुर्जों की आवश्यकता होती है उन के बिना खाना-वस्त्रादि या यातायात के साधन नहीं प्राप्त किये जा सकते।

इस विषय में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने जो कुछ किया उस का एक अच्छा उदाहरण दूरिन के फियट (Fiat) के मोटर कारखाने के लिए जो कुछ किया गया उस से मिलता है। युद्ध के दिनों में इस कारखाने का ७५ प्रतिशत भाग नष्ट हो गया था। इसको दो करोड़ ३० लाख डालर का ऋण दिया गया जिस से अमरीका से मशीनरी आदि प्राप्त हो गयी। इस समय यह कारखाना इतनी अच्छी तरह काम कर रहा है कि ट्रक और बस बनाने के अलावा यह प्रतिवर्ष एक लाख मोटर कार तैयार करता है और इस प्रकार योरप के प्रथम श्रेणी के कार बनाने वाले कारखानों में स्थान प्राप्त कर चुका है। इसके साथ ही आर्थिक सहयोग संचालन संस्था द्वारा प्राप्त हुई पूँजी से इटली के बिजली बनाने वाले कारखानों का पुनर्निर्माण कार्य चलता रहा है। बिजली के कार-

खानों को फिर से खड़ा करना यांत्रिक दृष्टि से ही नहीं आर्थिक दृष्टि से भी एक बड़ी समस्या थी। इटली में मिलने वाला कोयला कम और घटिया श्रेणी का होता है। यदि कोयला बाहर से मँगाया जाता तो उसकी विदेशी मुद्रानिधि में कमी हो जाती। इस समस्या का एक उत्तर तो यह था कि इटली के उत्तर में आल्पस् पर्वत से जो झरने गिर रहे हैं उनसे उत्पन्न होने वाली शक्ति का प्रयोग किया जाय। यह बड़ी सूझ की बात थी। इसके लिए बिजली बनाने वाली मशीनों का आर्डर दिया गया। किन्तु आल्पस् में भी तो ऐसे वर्ष आने हैं जब बर्फ नहीं गिरती। यदि कभी ऐसा हो गया तो, संकट का सामना करने के लिए क्या उपाय किया जायगा। इटली इस समस्या का समाधान चाहता था। तदनुसार इटली ने नयी पूंजी लगाने और नयी मशीनें लगाने का जो भी कार्यक्रम बनाया उनमें दुर्दिन में काम आने के लिए “थर्मल जेनेरेटिंग” यन्त्र को विशेष स्थान दिया गया ताकि यदि कभी बिजली का अभाव हो जाए तो कल-कारखाने बन्द न होने पायें।

टुस्कनी के एक दूरस्थ स्थान में—फ्लारेन्स के दक्षिण में ४० मील दूर इटली वालों को इस प्रकार के भय का निराकरण करने के लिए एक चीज मिल गयी—यह थी भूमि से पैदा होने वाली बिजली। (Geothermic Power) इस प्रदेश की भूमि झर झरी है; न जाने कब से इसमें पानी मरता है जो नीचे-नीचे ही लाने की चट्टानों तक पहुँचता रहा है जिससे प्रचुर मात्रा में भाप बनती और भूमि को तोड़ कर निरंतर बाहर निकलने की चेष्टा करती रही है। लड़ाई के पहले भी इटली के इंजिनियरों ने इन ‘भूगर्भस्थ वाहनों’ में सूराख करने की चेष्टा की थी ताकि उन सूराखों से निकलने वाली भाप से बिजली बनायी जा सके। युद्ध में परास्त होने के बाद जब जर्मन सेना वापस भाग रही थी तो

विश्व शान्ति के उपाय

जाने से पहले वह इन सब प्रयत्नों का अन्त कर गयी थी। जब तक आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अधिकारी घटनास्थल पर पहुँचे तब तक इटली के इंजिनियर अनेक बार इन सब कोशिशों को मूर्त रूप में देखने का प्रयत्न कर चुके थे। किन्तु उनके पास पर्याप्त मात्रा में पाइप और टरबाइन नहीं थे। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने उनको ये दोनों चीजें उपलब्ध कर दीं और इटलीवासियों को नये कुँए खोद कर अपने देश की भूमि-गर्भस्थ बिजली को विकसित करने का प्रोत्साहन दिया। इस समय इटली में इतनी बिजली उत्पन्न की जाती है कि उस का बारहवाँ हिस्सा इन भूमि गर्भस्थ शक्ति-स्रोत से ही मिलता है। प्रति वर्ष दो अरब किलोवाट घण्टे की बिजली यहाँ से मिलती है। इटली की भूमि समस्या कहीं अधिक पेचीदा है। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने इटली की भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने में सहायता प्रदान की है। खेतों से बैलों और जानवरों से हट चलने की जगह मशीनें काम करने लगी हैं और आधुनिक ढंग की खाद का इस्तेमाल किया गया है और साथ ही इटली के किसानों की सहायता के लिए ऐसे विशेषज्ञ भी भेजे गये जो कीड़ों और जन्तुओं को नष्ट करना जानते हैं।

किन्तु इटली में केवल भूमि को अधिक उपजाऊ बना देने भर से ही काम न चलेगा। उस देश में भूमि का प्रश्न गहरी राजनैतिक, सामाजिक और गणितात्मक समस्या है। उन बड़े बड़े जमींदारों की भूमि को जो स्वयं खेती नहीं करते और कहीं दूर शहर में रहते हैं अपने हाथ से काम करने वाले किसानों में बाँटना ही होगा। पर समस्या इतनी ही नहीं है, इटली में लाखों ऐसे किसान हैं जो दो, दो; तीन, तीन; एकड़ की छोटी-छोटी क्यारियों पर ही अपने जीवन का दारोमदार समझते हैं और किसी तरह जीवन-यापन कर रहे हैं। और इनकी भी समस्या

इतनी ही नहीं है कि इनके पास भूमि थोड़ी है। अक्सर यह भूमि भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी हुई है और एक टुकड़ा दूसरे टुकड़े से दूर होता है; इसलिए न केवल यही आवश्यक है कि बड़े-बड़े जमींदारों की भूमि को टुकड़े कर के फिर से किसानों में बाँटा जाए बल्कि छोटी-छोटी ब्यारियों की चकबन्दी करनी होगी। निश्चय ही यह बड़ा कठिन काम है किन्तु यदि इटली के किसानों में यह भावना पैदा करनी है कि वर्तमान सामाज में उसका अपना भी कुछ है तो इसको हल करना ही पड़ेगा।

इसके साथ ही यह भी प्रबन्ध करना होगा कि किसानों को जो भूमि मिले (जो अक्सर ऐसी होती है जिसको उसके पुराने स्वामियों ने लापरवाही से, बिना जुता छोड़ रक्खा था,) उसको इस योग्य कर दिया जाय कि उसमें अच्छी फ़सलें पैदा होने लगे। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए राज्य की ओर से सिंचाई की नालियों और ज़मीन को जंगल या दलदल से बचा लेने और सड़कों आदि के बनाने का प्रबन्ध होना चाहिए और जमीन के नये मालिक अपने खेतों को सुधार सकें। इसके लिए उनको हल आदि तथा ऋण दिलाना चाहिए। भूमि को सुधारने और भूमि सम्बन्धी सुधार करवाने के इस दोहरे काम को पूरा करने के लिए आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने अपने आर्थिक शस्त्रालय के एक अत्यन्त प्रभावयुक्त शस्त्र का प्रयोग आरम्भ किया है— यह शस्त्र है वह निधि जो मार्शल योजना की योरपीय “प्रतिमूर्ति” के रूप में जमा हुई है।

इस समय २०० से अधिक योजनाओं पर काम चल रहा है जिसको देख कर यह कहा जा सकता है कि खेती को उन्नत करने के लिए काफी बड़ा कदम उठाया जा चुका है। इस समय एक ओर सार्डीनिया से लेकर जहाँ आर्थिक सहयोग संचालन संस्था तथा रोकफैकर-फाउंडेशन

(Rockefeller Foundatoin) के सहयोग से सदियों पुरानी मलेरिया पैदा करने वाली दलदल के अभिशाप को दूर किया जा रहा है तो दूसरी ओर पो के उपजाऊ मैदान में और वहाँ से लेकर केलेब्रिया के चट्टानी इलाके में काम हो रहा है। केलेब्रिया के सीला प्रदेश में जहाँ इटली की सरकार ने सबसे पहिले भूमि-वितरण का कार्य प्रारम्भ किया था आर्थिक सहायता संचालन संस्था का पुनः भूमि प्राप्त करने और सिंचाई की योजनाओं पर बड़े वेग के साथ काम हो रहा है। यहीं सन् १९५० ई० की हेमन्त ऋतु में इटली के प्रथम भूमि-वितरण संस्कार की खुशियाँ मनायी गयी थीं। ऐसे ३६६ भाग्यशाली किसानों को जिनके नाम को पर्वियाँ लाटरा द्वारा निकला था ६-६ एकर के खेतों के नये खेत मिले। इनमें से अधिकांश ने प्रथम बार अपना भूमि देखी थी। उनके नेता ने हर्षपूर्ण आँसू बहाते हुए घोषणा का थी कि “जब से यह दुनिया बनी है तब से आज तक हमका कर्मा यह आशा न थी कि ऐसा भाग्यशाली दिन भी देखने को मिलेगा।”

इस प्रकार इन किसानों को जा भूमि मिली है उसको तो इस देश में जहाँ प्रतिवर्ष जनसंख्या में चार लाख की वृद्धि हो जाती है और जहाँ अन्य अनेक बाधाएँ हैं भविष्य में जा कुछ हाने वाला है उसका श्रावणेश और प्रतीक मात्र हा समझना चाहिए।

सहायता के यथार्थपूर्ण वितरण की आवश्यकता—विदेशी सहायता योजनाओं के व्यय का उचित सामाओं में रखने के लिए और उसका अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए हमका ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है जिससे खर्च कम से कम और बहुत सोच-विचार के बाद हो। इस दिशा में असावधानी बरतने से बड़ा अपग्नय हो जाया करता है और जिन देशों की सहायता करना अभीष्ट होता है, उनको सहायता

के बदले अनिष्ट हो जाया करता है। मार्शल योजना को कार्यान्वित करने में हमको जो कुछ भी सफलता मिली है उसका श्रेय आंशिक रूप से इस बात को ही है कि यद्यपि हमने अरबों डालर खर्च किये, हिसाब हमने एक-एक पैसे का रक्खा है। आरंभ में यह अनुमान था कि इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए १७ अरब डालर खर्च होंगे। अब तक इस काम में केवल १३ अरब डालर ही खर्च हुए हैं जब कि अनेक देशों का पुनरुत्थान काफी हद तक पहले ही हो चुका है। ग्रेट ब्रिटेन ने तो पहली जनवरी सन् १९५० ई० को अर्थात् निश्चित तारिख से १८ मास पहले ही मार्शल योजना के अधीन सहायता लेना रोक दिया था।

डालरों के साथ कार्य-कौशल का भी निर्यात आवश्यक: जब कि यह सच ही है कि अमरीका के उत्पादन का बढ़ा रहस्य यह है कि यहाँ मानव परिश्रम के पीछे शक्तिशाली मशीनों का सहारा प्राप्त है, यह भी सत्य है कि अमरीकावासियों को इस मशीनों से अधिकधिक लाभ उठाने की क्षमता भी प्राप्त है। इस विषय में अमरीका के मजदूरों को जो दक्षता और समय की मितव्ययता की जो कला प्राप्त है—जिस को उन्होंने कठिन अनुभव से प्राप्त किया है उस को “नो हाउ” (Know how) के नाम से पुकारा जाता है। इसका निर्यात और विदेशी कार्य दक्षता का आयात ही आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की “टैकनिकल” सहायता का आधार है।

मैं सन् १९२८ ई० से यह प्रयत्न करता रहा हूँ कि योरप के प्रत्येक कारीगर की कार्य क्षमता बढ़े (अर्थात् वह प्रतिघटे अधिक उत्पादन कर सके)। मेरा यह विश्वास है कि योरप की सम्पत्ति सृष्टि का बड़ी भाग्य हो सकता है। स्टुडवेकर कार्पोरेशन के अध्यक्ष अलबर्ट रूबिन

इर्स्कीन (Albert Russel Erskine) ने मुझ से कहा था कि मैं स्टुडवेकर के लंदन स्थित विक्रय विभाग और मरम्मत विभाग के विषय में एक रिपोर्ट दूँ। उस समय उनका यह विभाग नुकसान में चल रहा था। वहाँ पहुँचने पर मुझको यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यद्यपि साउथ बैंड, इंडियाना की अपेक्षा लंदन में मजदूरों का वेतन लगभग आधा था, मरम्मत के लिए जो काम आता था उस पर खर्च लगभग दुगना पड़ता था। उदाहरण के लिए साउथ बैंड में वाल्व ग्राइंडिंग (Valve grinding) के लिए १० डालर लगते थे। इस में से मिकी को जो निस्सन्देह विजली के ग्राइंडर से काम करता था ४ डालर मिलते या प्रतिघंटा ८ सेन्ट मिलते थे। लंदन में इस काम को करने के लिए तीन आदमियों की आवश्यकता थी—एक 'अप्रेंटिस', जो अधिकांश काम करता था, एक मैकेनिक जो वास्तव में वाल्व बैठाता था और एक इंस्पेक्टर जो काम समाप्त होने पर उस का निरीक्षण करता था। कुल मिला कर इनका वेतन ८ डालर से अधिक होता था। ग्राहक से १८ डालर लिए जाते थे और सब खर्च भरने के बाद 'स्टुडवेकर' को दो डालर का नुकसान होता था।

पहले तो मुझको यह सूझा कि इस विभाग में विजली से चलने वाले यन्त्र लगाए जाएँ और अन्य कार्य-पद्धति में सुधार किया जाय और इसके साथ ही मरम्मत की फीस कम कर दी जाय और मजदूरी बढ़ा दी जाय, किन्तु लंदन में स्टुडवेकर के सुप्रिंटेंडेन्ट और दूसरे लोगों ने मुझको विश्वास दिलाया कि ऐसा करने से अवश्य दिवाला निकल जायगा। उनका विश्वास था कि ब्रिटेन की परम्परागत कार्य-पद्धति में परिवर्तन करने से यह अनभिज्ञ अमरीकन धोखा खा जायगा। फलतः

मैंने प्रेजीडेंट अस्कॉन को परामर्श दिया कि वह अपने लंदन के कार-खाने को बेच डालें और उन्होंने बेच डाला।

किन्तु जो कुछ मैं लंदन में देख चुका था उस को मैं कभी भी नहीं भूल सका। ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते गये मेरी धारणा दृढ़ होती गयी कि योरप के मजदूरों, प्रबंध कर्त्ताओं और खरीदारों के लिए अमरीका की श्रम और व्यवहार प्रणाली को अपनाना वरदान सिद्ध होगा। अपनी इस धारणा को व्यवहार में लाने का अवसर सन् १९४८ ई० में मुझको एक शुभ दिवस को पैरिस में मिला। ब्रिटेन के साधुवृत्ति वित्त-मन्त्री सर स्टाफर्ड क्रिप्स और मैं योरप के आर्थिक पुनरुत्थान के मार्ग में आनेवाली बाधाओं पर विचार-विमर्श कर रहे थे। उन्होंने कहा, 'यदि हम ब्रिटेन में जीवन-मापदंड को ऊँचा उठाना चाहते हैं तो हमको कारीगरों की कार्य-क्षमता में वृद्धि करनी होगी।' मेरे हृदय में मानों नयी स्फूर्ति का संचार हुआ, इसी प्रकार की बात तो मैं किसी योरपवासी से सुनने का अभिलाषी था। वह बोले "इस विषय में ग्रेट ब्रिटेन को अमरीका से बहुत कुछ सीखना है—" यह कह कर वे कुछ रुक से गये और फिर कहने लगे "मेरे विचार में हमारे पास भी कारीगरी सम्बन्धी कुछ ऐसी भेद की बातें हैं जिनको लगभग हम एक पीढ़ी से छुपाते आ रहे हैं। आप सम्भवतः उनको जानना चाहेंगे। हम इस प्रकार की जानकारी का परस्पर लेन-देन क्यों न आरंभ कर दें।"

यह स्वाभाविक ही था कि मैंने इस प्रस्ताव को तुरंत ही स्वीकार कर लिया और मैंने कहा कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमको लोगों के अटलांटिक के इस पार से उस पार आने-जाने का प्रबन्ध करना चाहिए। हम ब्रिटेन से मैनेजर्स और मजदूरों को अमरीका के कल-कार-खानों का अध्ययन करने के लिए ले जा सकते हैं और आपके कल-कारखानों

विश्व शान्ति के उपाय

में किस प्रकार काम होता है, यह देखने के लिए अमरीका के कुछ लोगों को वहाँ ला सकते हैं। वहाँ बैठे-बैठे सर स्टाफर्ड ने मेरे साथ यह समझौता कर लिया और अपनी आश्चर्यजनक शाकाहारी शक्ति को 'ब्रिटिश अमरीका उत्पादक' समिति के स्थापना-प्रयत्न में लगा दिया। अमरीका की ओर से जनरल इलैक्ट्रिक के फिलिप रीड और सी० आई० ओ० (अमरीका की मजदूर कांग्रेस) के विक्टर रूथर (Victor Reuther) जैसे उच्च कोटि के सज्जन अमरीका के प्रबन्ध कर्ताओं और श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने गये। ब्रिटेन की ओर से इम्पीरियल कैमीकल इंडस्ट्रीज के उपाध्यक्ष स्वर्गीय सर फ्रेड्रिक वैन और आइरन एंड स्टील ट्रेडर्स कानफ़ेडरेशन के बड़े मन्त्री श्री लिन्कन इवान्स नियुक्त हुए। उन्होंने आपस में यह तय कर लिया कि किन-किन उद्योगों में इस प्रकार की जानकारी के लेन-देन का सबसे अधिक लाभ होगा। शीघ्र ही कार्य योजना तथा कार्यक्रम निर्धारित कर दिये गये।

ब्रिटेन की ओर से जो प्रथम दल आया उस में इस्पात उद्योग के मैनेजरो और मजदूरों के प्रतिनिधि थे। ये लोग छः सप्ताह अमरीका में रहे। उन्होंने अनेक कारखाने देखे। दिन में ये लोग जो कुछ देखते थे उस को लिख लिया करते थे और रात को उस पर मनन किया करते थे। ये लोग खिलवाड़ के लिए अमरीका नहीं आये थे। वे नयी बातें सीखने के इद्द निश्चय को ले कर यहाँ आये थे। जब ये लोग वापस लौटे तो इन्होंने ऐसी रिपोर्ट प्रकाशित की जिस से वहाँ के लोगों की आँखें खुल गयीं। पहले १५ दिन में ही इस रिपोर्ट की २५ हजार प्रतियाँ बिक गयीं और तीन संस्करण निकले। इस रिपोर्ट का सारांश यह था कि ब्रिटेन के कल-कारखानों में काम करने वाले व्यक्ति के हाथ से जितना काम तैयार होता है अमरीका के कल कार-

खानों में काम करने वाले व्यक्ति का काम उस से ५० से ९० प्रतिशत अधिक होता है। ब्रिटेन के लोगों को शीघ्रातिशीघ्र अधिकाधिक मशीनों का प्रयोग करना चाहिए और इस प्रकार अपने उत्पादन को बढ़ाना चाहिए अन्यथा उन के जीवन-मापदंड में जो सुधार होना चाहिए वह नहीं होगा।

इस प्रकार के श्री गणेश से मुक्त को यह आशा बँधी कि मेरे यांत्रिक सहायता विचार का इसी उत्साह के साथ अन्य देशों में भी स्वागत किया जायगा। सम्भवतः भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण योरप के अन्य देशों में पूरी तरह से यह बात न समझी जा सकी कि इस प्रकार की सहायता से औद्योगिक प्रणाली को किस प्रकार नया जीवन प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार की यांत्रिक सहायता से जो असीम आशाएँ थीं वे तो पूरी न हो सकीं किन्तु लगभग तीन हजार योरपियनों को, जो बड़े-बड़े दलों में या दो-दो तीन-तीन की टुकड़ियों में यहाँ आये, आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के तत्वावधान में अमरीकन कार्य-कौशल की शिक्षा दी जा चुकी है। यह योजना कल कारखानों तक ही सीमित नहीं रखी गयी है। हालैंड के किसान आयोवा प्रदेश के फार्मों पर अनाज का उत्पादन देख सकें। नारवे के लोग हमारी कोयले की खानों की कार्य-प्रणाली का अध्ययन कर सकें; इटली के लोग यह जान सकें कि अमरीका में मिश्रित अनाज कैसे पैदा किया जाता है; टर्की के लोगों को प्रत्यक्ष रूप से यह जानने का अवसर मिला कि हमारे नागरिकों के लिए हवाई जहाज किस प्रकार रखे और चलाये जाते हैं, तथा सड़कें किस प्रकार बनायी जाती हैं।

योरप के लोग जब अपने घर लौटते हैं तो अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक कार्यों में उन तरीकों को अपनाने का भरसक प्रयत्न करते हैं जो

विश्व शान्ति के उपाय

उन्होंने यहाँ सीखे हैं। इसका मतलब यह है कि वे परम्परा को तिलांजलि देने का यत्न करते हैं—परम्परा से पिण्ड छुड़ाना किसी भी देश में आसान नहीं है। इन लोगों ने प्रवर्तकों जैसा जो उत्साह दिखाया है उस का परिणाम अच्छा हुआ है। योरोप में इस समय कार्य विस्तार और विकास की एक नया भावना पायी जाती है।

योरोप के लोग हमारी खरादों और हलों के बारे में जो कुछ सीखते हैं वह तो महत्व की बात है ही, उससे भी बड़े महत्व की बात यह है कि वे अमरीका के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। उन्होंने यहाँ आ कर देखा है कि इस देश में दुकानों की आत्मारियाँ सामानों से भरी हैं, जिस का श्रेय यहाँ के लोगों की ऊँची कार्य क्षमता को और अच्छे वेतन ही को है। उन्होंने यह भी देखा है कि अमरीका में जैसी समृद्धि है उस को उन सभी देशों में भी सम्भव बनाया जा सकता है जहाँ के लोग परिश्रम करने को तत्पर हों। इस से भी अधिक महत्व की बात यह है कि उन्होंने देखा कि “अमरीकन प्रणाली” (American Way of Life) का अर्थ यह है कि यद्यपि लोग यहाँ मिल-जुल कर काम करते हैं व्यक्ति की प्रधानता को अँच नहीं आने दी जाती। नकली रेशम के कारखाने में काम करने वाले जो लोग यहाँ आये थे उन्होंने यहाँ से लौट कर कहा था कि अमरीका में प्रबन्ध कर्ताओं और श्रमिकों में अत्यन्त मित्रतापूर्ण और सहयोग की भावना पायी जाती है। “जिन-जिन कारखानों में हम गये उन में से अधिकांश में हमने प्रबन्ध कर्त्ताओं और मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्धों को अति उत्तम पाया। पारस्परिक सम्मान के आधार पर बहुधा भाईचारे का वातावरण मिलता है वहाँ”, ऐसा एक ब्रिटेन के सूती कारखाने की टीम ने कहा था। फ्रान्स के एक ट्रेड यूनियन का मत था कि “मुझ को यह देख कर सब से अधिक आश्चर्य

हुआ कि अमरीका के मालिक साधारण मानवी समस्याओं को विशेष महत्त्व देते हैं। अमरीका में मालिक एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक होता है जो इस बात को समझता है कि उस की अपनी समृद्धि का मज़दूरों के कल्याण से सीधा सम्बन्ध है।" वेल्डिंगम से कोयले की खानों में काम करने वाले जो लोग यहाँ आये उन का कहना था कि अमरीका में "प्रबन्ध कर्त्ताओं और मज़दूरों ने मिल कर एक ओर जहाँ कार्यक्षमता में वृद्धि करने का यत्न किया है दूसरी ओर वहाँ पारस्परिक मानवी संबंधों में सद्भावना जगाई है।" जहाँ तक हमारा अपना सम्बन्ध है हम ने देखा है कि 'यांत्रिक सहायता' से एक तर्फा ही लाभ नहीं होता। सर स्टाफर्ड क्रिप्स ने जब यह कहा था कि सम्भवतः अमरीका वासियों को भी ब्रिटेन से कुछ सीखना पड़े तो उन की बात सच हा थी। अमरीका वालों ने ब्रिटेन से 'निर्माण कला' के बारे में बहुत कुछ सीखा है— उदाहरणार्थ कटलरी (Cutlery) और कैबिनेट निर्माण कला के संबंधों में। इन सब से भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि अटलांटिक महासागर के दोनों ओर रहने वाले लोगों में इस आदान-प्रदान के फल-स्वरूप अधिक सद्भावना का जन्म हुआ है। अमरीकावासी समझ गये हैं कि अंग्रेज व्यंग पूर्ण चित्रों जैसे नहीं हैं जैसा कि वे उन का समझा करते थे और अंग्रेज भी जान गए कि अमरीकावाले सिनेमा में चित्रित गुंडेपन और गँवारपन ही का समिश्रण नहीं हैं, वरन् वास्तव में मानव प्राणी ही हैं। इसी प्रकार की पारस्परिक सहानुभूति के आधार पर ही तो स्वतंत्र देशों के लोग अपने शान्ति संघर्ष से सफल हो सकते हैं।

जिस समय हम योरप में अपनी विस्तृत यांत्रिक सहायता योजना द्वारा उत्पादन क्षमता को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे चीन में हम एक अन्य

विश्व शान्ति के उपाय

प्रकार की योजना के परीक्षण में लगे थे। सन् १९४८ ई० में चीन सहायता कानून में एक धारा द्वारा यह आयोजन किया गया था कि अमरीका से पाँच सदस्यों का “देहात पुनर्निर्माण” कमीशन भेजा जाय; इस धारा में देहातों में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए असंतोष के शमन के लिए एक नयी विधि सुझायी गयी थी—मतलब उन अवस्थाओं को दूर करने से था जिन से चीन (और समस्त दक्षिण-पूर्वी एशिया) कम्युनिज्म के लिए सुगम आखेट बनते चले जा रहे थे।

सन् १९४६ ई० में कृषि के अमरीकन तथा चीनी पर्यवेक्षकों ने उन सुधारों पर ध्यान आकर्षित कराया था जिन को सम्पादित करना चीन के लिए अत्यन्त आवश्यक था। नृशंस जमीन्दार किसानों से उन की पैदावार का ५० से ८० प्रतिशत भाग तक लगान के रूप में उठा ले जाया करते थे। जमींदारों और किसानों के बीच किए जाने वाले पट्टे बढ़ा भारो मज़ाक बन कर रह गये थे। जब भी जमींदार चाहता था उनमें परिवर्तन कर सकता था। बीच के लोग किसान की आय में और भी कमी करते रहते थे। करों और ब्याज के कारण किसान की अवशिष्ट आय भी समाप्त हो जाया करती थी। सन् १९४८ ई० की हेमन्त ऋतु में मास्को द्वारा तैयार किये गये कम्युनिस्टों के सुसंगठित दल ने किसानों की दुरवस्था को एक महती राजनीतिक समस्या का रूप दे दिया था। उस समय किसानों के कष्ट और असंतोष के विषय में जो कुछ भी कहा जा सकता था सब विश्वसनीय था। ऐसा प्रतीत होता था कि एशिया के १, २५०, ०००, ००० नरनारियों को (जिनमें चीन के ४५०, ०००, ००० नरनारी भी शामिल हैं) जो कृषि सम्बन्धी सुधार चाहते थे, कम्युनिस्टों के प्रभाव से उन्मुक्त रखना संभव नहीं था। कम्युनिस्ट राजनीतिक क्षेत्र में कृषि सुधारक बनने का ठोंग किये हुए थे।

यह तुरंत ही स्पष्ट हो गया कि ऐसी व्यापक स्थिरता स्थापित करने के पहले जो कम्युनिस्टों के प्रभाव का निराकरण कर सके चीन में कुछ आमूल परिवर्तन और पुनर्निर्माण कार्य आवश्यक हैं। देहात पुनर्निर्माण कमीशन को स्थापित करते समय तीन विशेष उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने का मन्तव्य किया गया था। सब से पहला सामाजिक न्याय का कार्यक्रम था जिससे लोगों का स्वास्थ्य सुधारा जा सके, लगान उचित नियत कराये जा सकें और उत्पादन बढ़ाया जा सके। अन्य उन 'मिशनों' के प्रतिकूल जो दफ्तरों में बैठ कर काम करते हैं इस मिशन के लोग पहाड़ियों में जनता के साथ काम करने को निकले। कहाँ वे रहे और किसानों से बातें कर रहे ताकि वे पता लगा सकें कि उनकी वास्तविक आवश्यकताएँ क्या हैं? मुझे यह कहने में तनिक भी हिचक नहीं होती कि लारेंस के दिनों में अरब में जो कुछ हुआ उसके बाद से निकट या सुदूर-पूर्व में पश्चिम के किन्हीं भी लोगों ने ऐसे प्रभाव ग्राह्य और सफल कार्य करने का यत्न नहीं किया।

डाक्टर रेमंड टी० मायर, जो इस मिशन के अमरीकन सदस्य थे और फारमोसा के आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अध्यक्ष हैं, वे इस कमीशन के द्वारा सदा यह प्रयत्न करते रहे हैं कि प्रान्तीय गवर्नर कृषि-सम्बन्धी सुधारों को स्वीकार कर लें। कई प्रान्तों में लगान घटा कर किसान की फसल का ३७½ प्रतिशत कर दिया गया था, अर्थात् लगान में १२½ से लेकर ३०½ प्रतिशत तक की कमी कर दी गयी थी।

इस के तुरंत पश्चात् चीनी किसान का रवैया बदलने लगा। जब अपनी पैदावार का अधिकांश भाग वह स्वयं अपने पास रखने की स्थिति में हो गया तो उसको अपने उत्पादन को बढ़ाने की भी सूझ हुई। अपने काम के प्रति उसके दृष्टि-कोण में जो अन्तर आया उसके साथ ही स्था-

विश्व शान्ति के उपाय

नीय सरकार के प्रति भी अब वह भिन्न विचार रखने लगा—अब उसको अनुभव होने लगा कि उसके प्रान्त के शासन-संचालन में उसका भी हाथ है ।

जिन जिन प्रान्तों में कृषि कमीशन का कार्य हुआ उन्हीं प्रान्तों में, जैसे जै चुवान, क्वांगसी और फुक्यांग में, कम्युनिस्ट आक्रांताओं को सबसे अधिक विरोध का सामना करना पड़ा ।

यदि कम्युनिस्टों की रीति-निति के कुछ वर्ष पहले ही इस विकल्प को व्यवहार में ले आया गया होता तो चीन की कहानी आज कितनी भिन्न होती ।

आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने जहाँ भी काम किया है—चाहे एशिया में हो या योरोप में—उससे इसकी आधारभूत धारणाओं की पुष्टि हुई है । जिन योजनाओं का उद्देश्य जनता का शारीरिक कल्याण था उन्हें से एसी आशा और विश्वास का जन्म हुआ जिनसे विभिन्न वर्गों में एक दूसरे के प्रति भ्रमात्मक धारणाएँ नहीं रहीं । आर्थिक पुनर्जीवन का अर्थ है नैतिक पुनर्जीवन ।

योरोप में हुए निर्वाचनों के परिणामों से इस बात की पुष्टि होती है कि जहाँ जनता का आर्थिक कल्याण हुआ है वहाँ ही कम्युनिस्टों की दाल नहीं गली । निश्चय ही निर्वाचनों के परिणाम पर जनतन्त्रात्मक शाक्तियों के पुनरुत्थान और उसमें पादरियों द्वारा किये जाने वाले कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार और जनता में उत्तरांतर बढ़ती हुई इस धारणा का कि कम्युनिज्म का प्रचार जितना रंगीन है उसका व्यवहार उतना ही वर्ततापूर्ण आद बातों का भी प्रभाव रहा है । पर हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि आर्थिक पुनर्निर्माण का निर्वाचनों में होने वाली कम्युनिस्ट विफलता से गहरा सम्बन्ध है । मार्शल योजना के पहले और

बाद में होने वाले निर्वाचनों के परिणामों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए बेल्जियम में औद्योगिक उत्पादन में १२ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। उधर पार्लमेन्ट में कम्युनिस्टों की १७ के स्थान पर २० सीट हो गई है। नारवे में उत्पादन २३ प्रतिशत बढ़ा और पार्लमेन्ट में कम्युनिस्टों की सदस्य संख्या ११ से बढ़ कर शून्य रह गई। हालैंड में जहाँ औद्योगिक उत्पादन में ५१ प्रतिशत की वृद्धि हुई, प्रान्तीय धारा सभाओं में कम्युनिस्टों की सन् १९४६ ई० में जो १० प्रतिशत शक्ति थी वह सन् १९५० ई० में ५ प्रतिशत ही रह गयी। डेन्मार्क में उत्पादन ३१ प्रतिशत बढ़ा है, और कम्युनिस्टों की शक्ति सन् १९४५ ई० की अपेक्षा सन् १९५० ई० के राष्ट्रीय निर्वाचन में १२ प्रतिशत के स्थान में ४ प्रतिशत ही रह गयी। आस्ट्रिया में उत्पादन में १४० प्रतिशत की वृद्धि हुई; सन् १९४५ ई० में कम्युनिस्टों के हाथ में ३० नगरों की म्युनिसिपैलिटियाँ थीं; अब सन् १९५० ई० के निर्वाचन के पश्चात् उनके हाथ में एक भी म्युनिसिपैलिटि नहीं रही।

ब्रिटेन और स्विट्जरलैंड में कम्युनिज्म कभी गंभीर समस्या का रूप धारण नहीं कर सका। यूनान, टर्की और पुर्तगाल में कम्युनिस्ट पार्टियाँ गैर कानूनी हैं। रूस और जनतन्त्रात्मक देशों के बीच चलने वाले संघर्ष में शक्ति परीक्षा के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण रंगमंच इटली और फ्रांस हैं। यद्यपि अभी अन्तिम परिणाम के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, हम यह अवश्य कह सकते हैं कि इन देशों में भी सफलता प्राप्त हो रही है। इटली में मार्शल योजना की सहायता की घोषणा मात्र से सरकार में कम्युनिस्टों का जो प्रतिनिधित्व था वह उल्लेखनीय रूप से कम हो गया है। उसके पश्चात् औद्योगिक उत्पादन में २७ प्रतिशत की जो वृद्धि हुई है वह वहाँ के मजदूर आंदोलन में कम्युनिस्टों के

विश्व शान्ति के उपाय

प्रभाव के लिए एक भारी चोट साबित हुई है। फ्रांस में सम्भवतः मार्शल योजना के कारण ही कम्युनिस्ट शासन सूत्र हाथ में लेते लेते रह गये। तत्पश्चात् वहाँ के उत्पादन में २६ प्रतिशत का सुधार होने से कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ना रुक गया और यदि हम फ्रांस के आर्थिक जीवन को सुदृढ़ करने में सहायता करते रहे तो अन्त में निर्विवाद रूप से वहाँ भी तानाशाही पर जन-तन्त्रता ही की विजय होगी।

एक ऐसी नसीहत थी जो मुझको सीखने की आवश्यकता न थी और वह यह थी कि योग्य शासन संचालन के लिए उच्चतम स्थानों के लिए उच्चतम योग्यता के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। कांग्रेस ने आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के स्टाफ के लिए २५ ऐसे पदों की आज्ञा दी थी जिसमें प्रत्येक का वार्षिक वेतन ४५ हजार डालर और ७५ ऐसे पदों की जिनमें प्रत्येक का वार्षिक वेतन १० हजार डालर निर्धारित किया गया था। सरकारी मापदंड से यह वेतन निरे उदारतात्मक थे किन्तु जिस प्रकार का काम हमको सौंपा गया था उसके लिये ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो उद्योग या विभिन्न व्यवसायों में इससे कई गुना अधिक कमा सकते थे। इस प्रकार की उच्चकोटि की योग्यता के व्यक्तियों को प्राप्त करने में मेरे व्यक्तिगत वकील श्री एम.टी० (टैक्स) यूर से मुझको बड़ी सहायता मिली। दूर-दूर के लोगों से टेलीफोन करने में हमने घंटों व्यतीत किये और कई बार तो हमको देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हवाई यात्रा करनी पड़ी ताकि किसी संभाव्य व्यक्ति की सेवाओं को प्राप्त किया जा सके। इस में हमको आशातीत सफलता मिली। केवल विनम्रता की भावना से ही नहीं बल्कि सत्य के लिए मुझको यह कहना चाहिए कि आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने जो

सफलता प्राप्त की उसका अधिकांश श्रेय इस बात को था कि इस काम के लिए मुझसे अधिक योग्य व्यक्ति मिल गये थे ।

इस विषय में मेरी सर्व प्रथम सफलता श्री एवरल हैरीमैन को पाने में थी । श्री एवरल हैरीमैन उस समय व्यवसाय विभाग के मन्त्री थे, उनको अब आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के यूरोपीय विभाग के कार्य की दिशा निर्धारित करने काम सौंपा गया । ग्रेट ब्रिटेन और रूस के राजदूत के पद और अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर रहने के कारण उनको योरप के विषय में गहरी जानकारी थी, इसलिए इस कार्य के लिए वह आदर्श व्यक्ति थे । व्यवसाय विभाग के उपमन्त्री विलियम फौस्टर की सेवाएं भी मैंने प्राप्त कर ली थीं । वह वाशिंगटन के शासन अधिनायकों में अत्यन्त प्रतिभाशाली और योग्य व्यक्ति थे । उनको योरप में श्री हैरीमैन का सहायक नियुक्त किया गया । श्री हार्वर्ड ब्रूस जो अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं ज्ञानवान् उद्योगपति थे अपने अवकाश को छोड़ कर मेरे सहायक बनने को तैयार हो गये । ब्रूस प्रारंभ में ६ महीने के लिए आये थे किन्तु वास्तव में उन्होंने बड़ी उदात्ता दिखायी और १८ मास तक मेरे साथ काम करते रहे । योरपीय गतिविधि के साधारण परामर्श देने के लिए हमको हारवर्ड यूनिवर्सिटी के कानून के प्रमुख प्रोफेसर मिल्टन काट्ज़ (Milton Katz) मिले । आप द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों में वाशिंगटन की शासन-प्राणाली के गोरख धंधे के पारंगत पंडित रह चुके थे ।

हमको उच्च पदों के लिए असाधारण योग्यता के व्यक्तियों को एकत्रित करने पर ही ध्यान केन्द्रीभूत नहीं करना था बल्कि यह भी देखना था कि हमारे स्टाफ के सदस्य अमरीका के सच्चे प्रतिनिधि हों अर्थात् ऐसे व्यक्ति हों जो अमरीका के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन के

विश्व शान्ति के उपाय

प्रत्येक अंग का प्रतिनिधित्व कर सकें। हमने विभिन्न क्षेत्रों से आदमी भर्ती किये। उदाहरणार्थ श्री राबर्ट हेन्स—बैंकर, श्री क्लिन्टन एस० गोल्डन—मज़दूर नेता, श्री ए० ई० स्टेले, मिडवेस्ट के उद्योग पति, रिचार्ड एम० बीसल जूनियर जैसे प्रतिभाशाली अर्थशास्त्रज्ञ, बालस्ट्रीट के कर्नल सी० हाइलर बुड जैसे प्रमुख दलाल, डाक्टर डेनिस, फिट्ज-रेल्ड जैसे राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त कृषि-विभाग के विशेषज्ञ। अन्त में जब हमने कार्य आरम्भ किया तो आर्थिक सहयोग-संचालन संस्था को इस बात का गर्व था कि इसके स्टाफ में अमरीका की सरकार, श्रमवर्ग, व्यापारी वर्ग, कृषि वर्ग और विश्वविद्यालयों के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि सम्मिलित थे। उन्होंने जिस प्रकार कार्य किया उससे अमरीका की ही जनता का नहीं बल्कि योरपीय जनता के हितों को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

बाहर के देशों की सहायता के लिए बनी योजनाओं के दृष्टिकोण से भी मेरी राय में सब से महत्व पूर्ण बात जो हम ने सीखी है वह यह है कि अपने उन रुपयों से जो हम ने विदेशों में आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए लगाया, आर्थिक जीवन को पुनःसंगठित करने में लगाया या सैनिक भंडे तैयार करने में खर्च किया, उस से अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए सरकार की ओर से रकमों को नियत करने के लिए केवल एक ही संस्था होनी चाहिए। अपनी आर्थिक गति-विधि पर एकात्मक नियंत्रण रख कर ही हम निम्न बातें सिद्ध कर सकते हैं:—

(१) विभिन्न देशों में उपयुक्त आर्थिक सहायता का वितरण (कई ऐसी संस्थाएँ होने से जो रुपये का वितरण करती हैं कई बार ऐसा होता है कि किसी एक राष्ट्र विशेष को आवश्यकता से अधिक सहायता मिल जाती है और दूसरे को बहुत कम);

(२) किसी देश विशेष में रुपये का अपव्यय रोकना (जब रुपये का खर्च दो या दो से अधिक संस्थाएँ करने लगती हैं तो बहुधा एक ही काम को दो बार करना पड़ जाया करता है);

(३) हमारे रुपये का सहायता पाने वाले देश पर जो प्रभाव हो उस को उचित सीमा में रखना (ऐसे किसी देश में जहाँ ब्रिटेन की भाँति सब लोगों को रोज़गार मिला हो पुनः शस्त्रीकरण के लिए आवश्यकता से अधिक जोर देने का अर्थ जीवन मापदंड में गिरावट हो सकता है जब कि जर्मनी जैसे देश में जहाँ बेरोज़गारी बहुत है हमारे रुपये के इस प्रकार खर्च किये जाने से जीवन मापदंड में उन्नति हो सकती है ।

आर्थिक सहयोग संचालन संस्था भी एक परीक्षण योजना के रूप में रही है और उस ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक पुनरुत्थान, आर्थिक विकास और पुनःशस्त्रीकरण की दिशा निर्धारित करने के लिए केवल एक ही संस्था होनी चाहिए । जहाँ आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का इन तीनों कार्यों पर नियंत्रण रहा है वहाँ ताँ इस को बड़ी सफलता मिली है । जहाँ इन तीनों कामों के लिये पृथक्-पृथक् संस्थाएँ काम करती रही हैं वहाँ ही इस की योजना और कार्य-सम्बन्धी योग्यता कम होती देखी गयी है ।

इसलिए अमरीका की जनता और कांग्रेस से मेरा यह अनुरोध है कि:—

विदेशों को हम जो भी आर्थिक या यान्त्रिक सहायता दें उस के संचालन के लिए एक पारदेशिक आर्थिक संचालन समिति (O. E. A.) की स्थापना की जाय । इस संस्था का इम्पोर्ट बैंक जैसी उधार देने वाली संस्थाओं पर भी काफ़ी नियंत्रण होना चाहिए, अन्तर्राष्ट्रीय

विश्व शांति के उपाय

आर्थिक संगठनों में अमरीका के जितने भी प्रतिनिधि हों वे इस संस्था के प्रति उत्तरदायी हों, और इस संस्था का पद सरकार के अन्य विभाग जैसे विदेश, व्यापार या गृह आदि के समान ही होना चाहिए और इस के संचालक का पद सरकारी मन्त्रिमंडल के सदस्यों के समान ही होना चाहिए ।

मेरी इस सिफारिश का दूसरे शब्दों में अर्थ यह है कि प्रस्तावित पारदेशिक आर्थिक संचालन समिति में वर्तमान आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का विलीनीकरण कर दिया जाय । विदेश विभाग द्वारा संचालित चतुः सूत्री योजना और पारस्परिक सुरक्षा सहायता योजनाओं के अन्तर्गत यो पीय पुनःसंस्त्रीकरण पर जो रुपया खर्च किया जा रहा है उस के आर्थिक पहलू के निरीक्षण का भी अधिकार इस को ही मिलना चाहिए । इस सब के अतिरिक्त वर्ल्ड बैंक, इन्टरनेशनल मानीटरी फण्ड, इन्टरनेशनल ट्रेड औरगेनार्इजेशन (जब कभी हम इस में सम्मिलित हों) और अन्य ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में जिन का सम्बन्ध संसार के आर्थिक जीवन से हो काम करने वाले अमरीकन प्रतिनिधियों का मार्ग निर्धारित करने का अधिकार भी पारदेशिक आर्थिक संचालन समिति को ही मिलना चाहिए ।

सातवाँ परिच्छेद

राजनीतिक मोर्चे पर शान्ति-संघर्ष

कुछ समय पहले तक व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए राजनीति का अभि-
प्राय “रिपब्लिकन” तथा “डेमोक्रैटिक” पार्टियाँ और नगर, राज्य और
राष्ट्रीय निर्वाचन से अधिक कुछ न था। इसके अतिरिक्त बचपन से ही यह
सुन-सुन कर मेरे कान भर गये थे कि हमको जार्ज वाशिंगटन का अनुकरण
करना चाहिए और स्थायी विदेशी मित्रताओं से दूर रहना चाहिए। और
निस्सन्देह इसका मुझे कभी आभास नहीं हुआ कि जार्ज वाशिंगटन के
समय में अटलांटिक महासागर को पार करने में पाँच सप्ताह और विश्व-
भ्रमण करने में १८ महीने लगते थे। इस समय सागर वही हैं परन्तु
यात्रा तालिका में थोड़ा अन्तर आ गया है। अनेक बार मैं अटलांटिक
पार कर योरप गया और, अमरीका आया हूँ। कभी मध्याह्न भोजन न्यू-
यार्क में किया है तो नाश्ता लन्दन या पैरिस में। एक बार मैं दुनियाँ
के चारों ओर भी घूमने गया और १४ दिन में यात्रा पूरी कर लौट आया
जिनमें से चलते रहने में ६ दिन से भी कम लगे थे।

मेरा विश्वास है कि स्वयं जार्ज वाशिंगटन, जो साहसपूर्वक या वस्तु-
स्थिति का सामना करने के अभ्यस्त थे, आज यह स्वीकार कर लेते कि
सन् १७९० ई० में संसार के लिए जो नीति उपयुक्त थी, सन् १९५१ ई०

विश्व शान्ति के उपाय

में उस पर अमल नहीं किया जा सकता। मेरा विचार है कि वाशिंगटन आज विन्सेन्ट शीन की इस बात से सहमत होते कि “यांग्टसी नदी मैनस्ट्रीट से हो कर गुज़रती है”। पिछले १६० वर्ष में जो अकथनीय परिवर्तन हुए हैं उनको देखते हुए यह मानना पड़ता है कि वाशिंगटन स्वर्गीय श्री हेनरी एल० स्टिमसन की इस उक्ति का समर्थन करते, “विदेशनीति हमारे घरेलू जीवन का एक अंग बन गयी है”।

इस समय कोई भी राष्ट्र अपने लिए कूपमंडूकता की नीति का अनुसरण नहीं कर सकता। २० वीं शताब्दी के दूसरे भाग में दुनियाँ के विभिन्न देश इतने घुल-मिल गये हैं कि ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की धारणा के आधार पर जीना और काम करना संभव है और यही हमारे नीति-शास्त्र और शान्ति-संघर्ष की अभिप्रेरणा है।

एक देश दूसरे देश पर कितना आश्रित है इसका ज्ञान होने से ही मेरे समीप विश्व राजनीति का एक नया अर्थ हो गया है। मेरा विश्वास है कि यदि “रिपब्लिकन” और “डेमोक्रेटिक” पार्टियों तथा स्वतंत्र निर्वाचन व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए केवल एक-एक उम्मीदवार की तानाशाही के गर्त में नहीं पड़ना चाहते तो हमको प्रत्येक प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ही के अर्थों में समझने का प्रयास करना चाहिए। वास्तव में इस समय हमारे अपने

रूस और अन्य कम्युनिस्ट देशों में किसी निर्वाचन क्षेत्र से एक से अधिक उम्मीदवार नहीं खड़ा हो सकता; जो उम्मीदवार खड़ा होता है उसको शासकों की स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिये। वास्तव में समस्त देश के लिये एक ही उम्मीदवार सूची होती है। लेखक का संकेत उसी ओर है—अनुवादक

जीवन पर विश्व राजनीति का प्रभाव हमारी मुहल्ला राजनीति की अपेक्षा कहीं गहरा पड़ता है। ब्राज़ील में कहवे को कोहरा मार जाय, भारत वर्ष में अकाल पड़ जाय, ब्रिटेन को अपनी मुद्रा दर घटानी पड़ जाय, फ्रांस में निरंतर मन्त्रिमंडल सम्बन्धी संकट चलता रहे, अफ्रीका में यूरेनियम की खान मिल जाए, लेवानोन में किसी राजनीतिज्ञ की हत्या हो जाय तो इन सब बातों का उन सब राष्ट्रीय निर्णयों पर प्रत्यक्ष और व्यापक प्रभाव होता है जो हमारे व्यक्तिगत या राष्ट्रीय भविष्य से सम्बन्ध रखती हैं। मुश्किलों ऐसा प्रतीत होता है कि हम सबको “बैरन्स” (‘Barron’s’) के सम्पादकों की बात माननी चाहिए, जो कहते हैं कि “संसार की हर जाति को अब या अतीत में कभी न कभी यह सीखने की आवश्यकता पड़ी है कि विदेशी मामले घरेलू मामलों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह सच है कि घरेलू मामले हमारी आँखों के सामने होते हैं और उनका प्रभाव भी हमारे ऊपर तुरंत ही होता है और इसलिए जनता का ध्यान भी उन पर अधिक रहता है, लेकिन वास्तव में जो निर्णायक घटनाएँ हैं वे वही हैं जिनका सम्बन्ध दूसरे राष्ट्रों से है चाहे उनका प्रभाव कितनी ही देर में क्यों न अनुभव किया जाय। विदेशी नीति ही इतिहास की जननी है”।

इस सब का अर्थ यह है कि हमारे शान्ति संघर्ष में विश्व राजनीति को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और यह कि शान्ति समय में भी हमारी विदेशी नीति उतनी ही निश्चयात्मक होनी चाहिए जितनी युद्ध काल में। फिर भी केवल पिछले १०-१२ साल से ही हमारी विदेशी नीति ने अपने नकारात्मक रूप को छोड़ कर निश्चयात्मक दिशा का अपनाया है। अब तक जो कुछ हुआ उसका संक्षेप में उल्लेख करने से पहले हमको यह भी सोचना चाहिए कि विदेशी नीति का निर्माण कौन

विश्व शांति के उपाय

करता है और उसको कार्यान्वित करने का दायित्व किसका है ।

हमारे विधान के अनुसार प्रेजीडेन्ट विदेश नीति को निर्धारित करते हैं और विदेश विभाग (State Department) उसको कार्य-रूप देता है । किन्तु यदि व्यावहारिक रूप से देखा जाय तो इसमें कांग्रेस का बड़ा हाथ रहता है । विदेशों से की जाने वाली सन्धियों की पुष्टि 'सेनेट' करती है और 'सेनेट' तथा 'हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव' विदेशनीति के निमित्त माँगी गयी किसी रकम को स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं । इस क्षेत्र में सरकार की जो कोई भी शाखा काम करती है उस में साधारण जन मत तथा विशेष हितों का प्रतिबिम्ब रहता है । विभिन्न व्यापारिक संस्थाएँ, मज़दूर संस्थाएँ और किसान संस्थाएँ सभी विदेश-नीति को प्रभावित करती रहती हैं । विभिन्न समाचार पत्रों में जो कुछ लिखा जाता है, रेडियो पर जो टीका-टिप्पणी होती है, शिश्नालयों में जो शिक्षा दी जाती है, गिरजाघरों में पादरियों के जो व्याख्यान होते हैं उन सभी का देश की विदेश नीति पर असर होता है । प्रत्येक अमरीकन नागरिक अमरीका की विदेशी नीति को निर्धारित कराने में योग देता है । सच तो यह है कि हम सब नर-नारी बिना जाने-बूझे या जानते-बूझते, साहस के साथ या आतंकित हो कर विदेश नीति के विकास में योग देते रहते हैं ।

हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हमारी नीति स्पष्ट, एकनिष्ठ एवं रचनात्मक हो ताकि हमारे अभीष्ट और साधनों में संतुलन रह सके । हमको यह सोचना चाहिए कि हम क्या चाहते हैं, और किन साधनों से उसको प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा हम अपने सामर्थ्य के बाहर हाथ-पाँव फैला कर अराजकता और व्यर्थता के शोषी ठहराए जाएंगे ।

जब कि प्रत्येक अमरीकावासी विदेशनीति को निर्धारित करने में

योग देता है उसको स्पष्ट करने का अधिकार विदेश विभाग को है। विदेश विभाग को न केवल हमारे सांस्कारिक एकान्तवाद के अवशिष्ट प्रभाव की बाधा का सामना करना पड़ता है वरन् अपने कर्मचारियों के प्रति परम्परागत सन्देहों से भी टक्कर लेनी पड़ती है। मुझको यह स्वीकार करना चाहिए कि जब मैं वाशिंगटन गया था तो मेरे मन में अभी तक विदेश विभाग के विषय में परम्परागत रूढ़ियों का असर वर्तमान था। उस समय मुझको लगता था कि विदेश विभाग एक ऐसी संस्था है जहाँ धारीदार पतलूनों और लम्बे कालरों का बाहुल्य है और जो एक अपरिग्रह पूर्ण पंडित वर्ग की भाँति 'प्रोटोकोल' नामक संस्कार को ही व्यक्त करने में व्यस्त रहता है। उस समय मैं समझता था कि विदेश विभाग कुछ ऐसे अहंकारी लोगों का समुदाय है जो अपने पारिवारिक धन या सम्पत्तियों की सनद के बल पर ही अपने आप को आगे बढ़ाने में लगे रहते हैं। ऐसा लगता था मानों उनको किसी भोज में कौन सा स्थान प्राप्त है। इसके विषय में अपने भूतपूर्व अधीनस्थ देशों में होने वाली राजनीतिक उजळ-पुथल की अपेक्षा वे अधिक चिंतित रहते हैं।

मेरा यह भ्रम तुरंत ही दूर हो गया। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के सम्बन्ध में अपने ढाई वर्ष के अनुभव से मैंने जान लिया कि विदेश विभाग के कर्मचारी अति परिश्रमशील, लग्नशील और योग्य व्यक्ति हैं। उनमें हमारे सभी सामाजिक वर्गों के लोग हैं। सन् १९३९ ई० में इस विभाग की सदस्य संख्या ५४०० थी, इस समय ७४००० है; इस से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि अमरीका का विश्व-नेतृत्व सम्बन्धी दायित्व बढ़ गया है साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि इस विभाग में पद प्राप्त करने के लिए केवल पारिवारिक धनान्वयता और सामाजिक स्थिति ही आवश्यक नहीं हैं।

विश्व शान्ति के उपाय

यह बड़े हर्ष का विषय है कि वाशिंगटन तथा अन्य स्थानों में अब विदेश विभाग के कार्यों के विषय में अधिकाधिक जानकारी होने लगी है। जिन संस्थाओं पर विश्व शान्ति की आशा अवलम्बित है इस ने ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को चुस्त बनाया है, उनका क्षेत्र बढ़ाया है, या जन्म दिया है। उदाहरणार्थ संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए पहले इसी ने भूमि तैयार की थी और बाद में इस को विश्व शान्ति की स्थापना के साधन के रूप में मज़बूत बनाया। संसार के विभिन्न देशों में पारस्परिक सहयोग बढ़ाने के लिए यह संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न शाखाओं-उपशाखाओं द्वारा काम करता रहा है। पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ाने के साथ-साथ इस नीति से हमारे देश के प्रति सद्-भावना और हमारे उद्देश्यों के प्रति अधिक जानकारी हो गयी है। संयुक्त राष्ट्र संघ के “खाद्य और कृषि संघ” के द्वारा हमारे विदेश विभाग से अमरीका ने भूमि, बीज और पशुओं के प्रति बरते जाने वाले अमरीकी तौर-तरीकों की भी जानकारी का प्रसार किया है, और “विश्व स्वास्थ्य संघ” के द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी अमरीकी उपचार आदि की जानकारी बढ़ायी है।

मस्तिष्क और हृदय की बातों का जहाँ तक सम्बन्ध है, उस क्षेत्र में अमरीका क्या कुछ कर चुका है, संसार में इस की जानकारी फैलाने के लिए विदेश विभाग ‘यूनेस्को’ की मार्फत काम करता रहा है। एक दूसरे देश के बीच अधिकाधिक व्यापार हो, सामान और सेवाओं का आदान-प्रदान हो, इस उद्देश्य को ले कर विदेश विभाग ने अन्य संस्थाओं की सहायता से प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संघ का, जो संसार में शान्ति रुपी पुल की एक मंजिल सिद्ध होगा आयोजन किया है।

इन सब से भी अधिक महत्व की बात यह है कि विदेश विभाग ही

ने “ट्रूमैन० सिद्धांत” मार्शल योजना, पारस्परिक सुरक्षा सहायता योजना और उत्तरी अटलांटिक संधि को विकसित किया; संयुक्त राष्ट्र संघ में जो हमारा योग रहा है उसको इन सब के साथ मिला कर देखें तो अपने देश की शांति कालीन पूर्णतः निश्चयात्मक नीति का पता चलता है। निश्चयात्मक विदेश नीति और अनिश्चित विदेश नीति के जो गुण-दोष हैं, उन का आभास हम को पश्चिमी योरप और एशिया को तुलना करने से मिल जाता है। पश्चिमी योरप में हमारी विदेश नीति निश्चयात्मक रही है; एशिया में अनिश्चित; पश्चिमी योरप में हम को जैसी सफलता मिली है, एशिया में वैसी नहीं। अमरीका बहुत पहले ही उस अवस्था को पार कर चुका है, जिस में संसार के किसी भी क्षेत्र में वह ‘सामुद्रिक स्वतंत्रता’, ‘मुनरो सिद्धान्त’, ‘खुला द्वार’, ‘स्पष्ट भाग्य’ या ‘पनामा नहर’ जैसी नकारात्मक नीतियों से काम चला सकता था, कई पीढ़ियों तक ये नकारात्मक नीतियाँ ही हमारी विदेशी नीति के मुख्य सिद्धान्त बनी रही थीं। इस प्रकार की विदेश नीति का ही यह परिणाम हुआ था कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् हम ‘लीग आफ नेशन्स’ के बाहर रह गये; और ‘केलोग ब्रायां पैक्ट’ (Kellogg Briand Pact) जैसे थोथे शब्द जाल के प्रति विश्वास पैदा कराने के लिए अदूरदर्शिता पूर्ण ढंग से यूरोप को अल्पकालिक सहायता और ऋण देने में व्यस्त हो गये। संसार के प्रत्येक देश से अपने सम्बन्धों को

यदि किसी देश के विरुद्ध अतिक्रमण होगा या अतिक्रमण की आशंका होगी तो अमरीका उस की सहायता करेगा। प्रेसीडेंट ट्रूमैन ने इस आशय की एक घोषणा की थी और इसी घोषणा के अनुसार अमरीका यूनान और टर्की की सहायता करता रहा है। इसी को “ट्रूमैन सिद्धान्त” कहते हैं।

विश्व शान्ति के उपाय

निर्धारित करने के लिए हमारी विदेश नीति का निश्चयात्मक होना इतना आवश्यक है कि मेरी राय में विदेश विभाग को अपनी समस्त शक्ति इसी पर केन्द्रित कर देनी चाहिए। अपने दूतालयों द्वारा जो साधारण गतिविधि चलती है, उसको छोड़ कर शेष बातों में विदेश विभाग को अपना ध्यान केवल इसी उद्देश्य को पूरा करने में लगाना चाहिए।

उदाहरण के लिये, विदेश विभाग को अन्य उपयुक्त सरकारी संस्थाओं के साथ मिल कर एवं अपने व्यापक राजनीतिक ध्येय को दृष्टि में रख कर यह तय करना चाहिए कि संसार के किस क्षेत्र विशेष को हमारी आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए और कहाँ हमारी ओर से प्रचार कार्य होना चाहिए। हमको “चार सूत्री योजना” या “वायस आफ अमेरिका” जैसे कार्य-क्रम के ही पीछे पड़े रह कर अपनी शक्ति और योग्यता नहीं खोते रहना चाहिए। इस प्रकार के कामों को साधारण संस्थाओं के हाथ में न छोड़ कर स्वयं ही उन में फँसे रहने का वही परिणाम हो सकता है जो किसी सेना के नीति-नायकों के स्वयं नीति को स्वयं कार्यान्वित करने के प्रयत्न से हुआ करता है।

आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का अनुभव इस दिशा में मार्ग प्रदर्शन का कार्य करता है। इस संस्था की स्थापना का एक विशेष राजनीतिक ध्येय था, विदेश नीति में एक विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करना था; इस ध्येय को पूरा करने के लिए आर्थिक सहायता का माध्यम निर्धारित किया गया था। इसकी स्थापना के समय यह चिन्ता उत्पन्न हो गयी थी कि कहीं ऐसा न हो कि विदेश विभाग और आर्थिक सहयोग संचालन संस्था आपस में यही झगड़ा करने लगे कि किसका कार्य-

क्षेत्र कहाँ तक सीमित रहना चाहिए। वास्तव में इसकी इतनी बड़ी आशंका थी कि कांग्रेस को सन् १९४८ ई० के विदेशी सहायता कानून (जिसके अन्तर्गत आर्थिक सहयोग संचालन संस्था को काम करना था) में यह निर्धारित कर दिया गया कि आर्थिक सहयोग संचालन समिति के संचालक और विदेश मंत्री को एक दूसरे से पूरी तरह और नित्य-प्रति विचार-विमर्श करते रहना चाहिए और ऐसे ही निर्णय करने चाहिए जो दोनों को स्वीकार हों। उसमें यह भी बताया गया था कि यदि कोई ऐसा विषय रह जाय जिस पर कभी इन दोनों में समझौता न हो सके तो, उस विषय को सीधे प्रेजीडेंट के सामने रखा जाना चाहिए। अभी तक ऐसा कोई विषय नहीं उत्पन्न हुआ जिसको प्रेजीडेंट के सामने रखने की आवश्यकता पड़ती और मुझको विश्वास है कि ऐसा कभी होगा भी नहीं।

वास्तव में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था को विदेश विभाग का पूरा पूरा सहयोग प्राप्त रहा है; ऐसा न होता तो यह संस्था कोई भी प्रगति नहीं कर सकती थी। मेरी राय में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था ने आर्थिक क्षेत्र ही में कार्य करते रह कर विदेश विभाग को उसके एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ध्येय की ओर बढ़ने में सहायता दी है। वह ध्येय है योरप के लोगों में सदा से अधिक सहयोग उत्पन्न कराना; यह अनुभव कराना कि उन सबकी समस्याएँ मूलतः एक ही हैं, तथा उनको सामान्य अवसर प्राप्त हैं तो सामान्य संकटों का भी सामना करना है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि इस ओर प्रगति हुई है तो इसमें आर्थिक सहयोग संचालन संस्था द्वारा पश्चिमी योरप में आर्थिक एकता स्थापित करने के प्रयत्न से अवश्य ही बड़ी सहायता मिली है। एकता का सब से बड़ा गुण यह है कि एक बार

विश्व शान्ति के उपाय

स्थापित हो जाने पर यह चारों ओर फैलती रहती है। एक बार आप आर्थिक क्षेत्र में एकता का श्रीगणेश करा दीजिए तो आप देखेंगे कि राजनीतिक क्षेत्र में भी एकता स्थापित होने लगी है और आवश्यकता पड़ी तो सैनिक क्षेत्र में भी एकता स्थापित हो जायगी।

मैं अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि इस व्यापक एकता की सम्भावनाएँ मौजूद हैं। जब जुलाई सन् १९४८ ई० में मैं प्रथम बार आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का संचालक बन कर योरप गया तो मुझे उस के आर्थिक जीवन को देख कर लगता था मानो प्रत्येक राष्ट्र अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग ही खड़ा करने के चक्र में था।

ऐसे महान् उद्देश्य के लिए कोई अकेला देश या उन १६ देशों में से कोई भी योरोपीय महाद्वीप के साधनों का पूरी-पूरी तरह प्रयोग नहीं कर सकता था। पिछले ५० वर्ष से पश्चिमी योरप आर्थिक राष्ट्रीयता की ओर बढ़ता रहा है। विभिन्न देश एक दूसरे के विरुद्ध व्यापार संबंधी प्रतिबंध लगाते रहे हैं; तट-करों की दीवारें खड़ी करते रहे हैं और आयात 'कोटों' (Quotas) तथा मुद्रा-नीति द्वारा एक दूसरे का सामान आना असम्भव करते रहे हैं, और केवल इसीलिए कि अपने ऐसे उद्योगों को जो आर्थिक दृष्टि से लाभहीन और दकियानूसी थे, संरक्षण मिलता रहे। इन व्यापारिक बाधाओं से यह स्वाभाविक ही था कि स्थिति और भी खराब हो गयी। अमरीका कम खर्च से बड़े पैमाने पर सामान तैयार करता रहा था। इस नीति का अनुसरण कर के उसने पिछले ५० वर्ष में अपने उत्पादन और जीवन-मापदंड को बहुत ऊँचा उठा लिया था। योरप के लोग उसके इस कला-कौशल से लाभ नहीं उठा सके थे। इसका कारण स्पष्ट था। बड़े पैमाने पर और

कम खर्च से माल तभी बनाया जा सकता है जब काफी बड़े क्षेत्र में अमर्यादित एवं एकतात्मक बाज़ार मिल सके, कारखाने में बनने के बाद सामान खपत करने वाले के पास सीधे और अबाध रूप से पहुँचना चाहिए ।

इस प्रकार के व्यापारिक विधनों से योरप के राष्ट्रों को जो हानि हुई उसका चित्रण करने के लिए योरप और अमरीका के उत्पादन के तुलनात्मक आँकड़ों का उल्लेख करना श्रेयस्कर होगा । सन् १९०० ई० में योरप और अमरीका के मजदूरों की प्रतिव्यक्ति के हिसाब से उत्पादन शक्ति प्रायः समान ही थी । दोनों का खर्च भी प्रायः एक सा ही था । किन्तु सन् १९५० ई० में अमरीका ने जिसकी जन संख्या १५१, ०००, ००० है कुल मिलाकर २७१, ०००, ०००, ००० डालर का सामान तैयार किया, इसके प्रतिकूल मार्शल योजना से लाभ उठानेवाले देशों ने जिनकी जन संख्या २७४, ०००, ००० है कुल ५३५, ०००, ००० डालर का सामान तैयार किया । यदि प्रत्येक योरपवासी का उत्पादन प्रत्येक अमरीकावासी के समान ही होता तो योरप में इस वर्ष में ५००, ०००, ०००, ००० डालर का सामान तैयार होना चाहिए था । यह सच है कि पश्चिमी योरप के पास पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल तथा मशीनें नहीं हैं । औद्योगिक क्षेत्र में हम जिन साधनों का प्रयोग करते हैं उनका प्रयोग अपनाने में योरप के लोग अभी बहुत देर तक हमसे पीछे ही रहेंगे । तिस पर भी यदि तट-करों और नियंत्रणों के अतिरिक्त बाधाएँ न रहें तो निश्चय ही पश्चिमी योरप प्रति वर्ष १००, ०००, ०००, ००० डालर का और सामान पैदा कर सकता है । इन अतिरिक्त १००, ०००, ०००, ००० डालरों से मार्शल योजना से लाभ उठाने वाले

देशों की समृद्धि भी बढ़ सकती है और पुनः शस्त्रीकरण भी अधिक तेज़ी से हो सकता है ।

यह सच है कि प्रारंभ ही से पश्चिमी योरप में व्यापारिक बाधाओं को दूर कराने के हमारे प्रयत्नों के पीछे आर्थिक अभीष्ट के अतिरिक्त कुछ और भी था । हम क्षण भर के लिए भी यह न भूल सके थे कि मार्शल योजना शान्ति स्थापित करने का कार्यक्रम है और हमारी यह भी धारणा थी कि आर्थिक राष्ट्रीयता (आत्म-निर्भरता) और हमारे उद्देश्य में अवश्य ही कलह उत्पन्न हो सकता है । हम यह मानते थे कि यदि हिटलर जर्मनी के चारों ओर आत्मनिर्भरता के नाम पर व्यापारिक बाधाओं की दीवार खड़ी न करता तो उसको द्वितीय विश्वयुद्ध का सूत्रपात करने को प्रोत्साहन न मिलता । इस दीवार ही के कारण वह अपने यहाँ युद्ध की तैयारी करने के निमित्त कृत्रिम पेट्रोल, कृत्रिम रबड़ और इस्पात के नये कारखाने खड़े कर सका था । ऐसा करने में जो खर्च हुआ उसकी उसने चिन्ता नहीं की । क्योंकि उसको बाहर से प्रतियोगिता का भय नहीं रहा था । यदि राहर का सामान वहाँ अबाध रूप से आ सकता तो उसके कल कारखाने उसका मुकाबला नहीं कर सकते थे ।

यह स्पष्ट ही था कि योरप में स्थायी समृद्धि को जन्म देने के लिए आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की ओर से उसकी सबसे बड़ी सहायता उसके आर्थिक एकीकरण द्वारा ही हो सकती थी । कितना अच्छा होता कि मैं आप से यह कह पाता कि आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की कार्यवाहियों के कारण योरप का आर्थिक जीवन एक सूत्र में आवद्ध कर दिया गया है और अब वहाँ एक देश और दूसरे देश के बीच में व्यापारिक बाधाएँ नहीं रह गयी हैं और वह हमारी अपनी घरेलू मंडी की तरह ही एकतात्मक मंडी बन गया है । यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसा

नहीं हो सका है। योरप को अभी तक चुंगी-करों और तटकरों तथा मुद्रा-विनिमय सम्बन्धी ऐसी भान्तर क बाधाओं का रोग लगा हुआ है जो स्वतंत्र रूप से सामान तथा सेवाओं को एक दूसरे देश में आने-जाने से रोकता रहता है। इस सब के बावजूद इतनी उन्नति अवश्य कर ली गयी है कि मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि आर्थिक राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति रुक गयी है।

योरपीय देशों में एक दूसरे के साथ व्यापार प्रायः समाप्त हो चुका था। मार्शल योजना के प्रथम वर्ष ही में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था द्वारा बनायी गयी एक भुगतान संघ (Payments Union) योजना के द्वारा इस व्यापार को पुनः चालू किया गया। एक देश दूसरे देश को जो सामान भेजता था इस योजना द्वारा अब उसको बदले में कीमत के रूप में डालर मिलने लगे। पहले विभिन्न राष्ट्र अपनी मुद्रा-दर इतनी ऊँची रख लिया करते थे जो उनको स्वतंत्र मंडी में कभी प्राप्त नहीं हो सकती थी। ऐसी स्थिति में उनके पारस्परिक व्यापार को पुनः चलाने के लिए और कोई निधि हो भी नहीं सकती थी। नयी योजना के अमल में आने के बाद पश्चिमी योरप के सभी देशों ने अपने-अपने यहाँ पारस्परिक व्यापार के लिए ५० प्रतिशत चीजों को आयात-नियंत्रण से मुक्त कर दिया है।

ब्रिटेन ने जब अपने पौंड की कीमत गिरा दी तो हमको योरप के भान्तरिक व्यापार के स्नाइ-झंकाड़ों में से एक नया रास्ता ढूँढ़ निकालने का अवसर मिला। ब्रिटेन द्वारा अपने पौंड की कीमत घटा देने से प्रायः सभी योरपीय देशों को अपनी-अपनी मुद्राओं की दर पुनः निर्धारित करनी पड़ी थी। यही वह अवसर था जिसकी हम देर से तलाश में थे। अब योरपीय भुगतान संघ (Payments Union)

विश्व शान्ति के उपाय

नाम की संस्था स्थापित की गयी जिस के द्वारा योरप की मंडियों में 'फ्रान्क' (फ्रान्स, वेल्जियम आदि देशों की मुद्रा) 'लीरा' (इटली की मुद्रा, 'गिल्डर' (हालेण्ड की मुद्रा), 'पाउंड' (ब्रिटेन की मुद्रा) नामक मुद्राएँ स्वतंत्र रूप से अदली-बदली जाने लगेंगी । इस का अर्थ यह हुआ कि अब उक्त सब देशों में से यदि कोई देश आपस ही के किसी देश से सामान मँगाए तो उस के लिए अदायगी करने के लिए वह उस रकम का प्रयोग कर सकता था जो उसको आपस के किसी अन्य देश को सामान दे कर प्राप्त हुई थी । इसके साथ ही जिस समझौते के अन्तर्गत भुगतान संघ की स्थापना हुई उसी में यह भी मान लिया गया था कि अन्य वस्तुओं पर से भी मात्रा-सम्बन्धी प्रतिबंध दस प्रतिशत कम कर दिया जायगा । इस प्रकार योरप के आन्तरिक व्यापार में ६० प्रतिशत व्यापार जिसमें खाद्य सामग्री, कच्चा माल और बना हुआ माल शामिल थे, नियंत्रणों से मुक्त हो गया और शीघ्र ही ७५ प्रतिशत व्यापार को उन्मुक्त करने के उद्देश्य को पूरा किया जा सकेगा ऐसी आशा है ।

आजकल राजनीति और अर्थशास्त्र किस प्रकार एक दूसरे से घुले-मिले तथा एक दूसरे के लिए किस प्रकार सहायक सिद्ध होते हैं, योरपीय भुगतान संघ इस का एक उदाहरण है । योरपीय भुगतान संघ को जिसके ऊपर २७४,०००,००० मानव-प्राणियों की आजीविका अवलम्बित है, संगठित करने में विदेश विभाग और पार्लियामेंट, उद्योग-पति एवं कृषक वर्ग सभी ने सहयोग दिया है ।

योरपीय भुगतान संघ, किस रचनात्मक कल्पना का प्रतीक है, कैसे नाजुक विचार-विमर्श के पश्चात् इस ने अस्तित्व पाया, किस प्रकार अल्पकालीन राष्ट्रीय स्वार्थों को चिरकालीन अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थों को

सम्पादित करने के लिए पीछे हटाया गया और इसका सृजन किया गया; यदि मेरे पास यह सब बताने को समय और वक्तृता-शक्ति होती तो कितना अच्छा होता ! अब तो मैं केवल इतना ही कह कर संतोष किए लेता हूँ कि योरोपीय भुगतान संघ ऐसी एक जीवित संस्था है जो आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के नेतृत्व में काम करती है, तथा जिसके पीछे संयुक्त पूँजी है और जिस में “स्वर्ण मान” (Gold Standard) और (Credit clearing house) के समस्त गुण सन्निहित हैं; इन सब गुणों के साथ-साथ आर्थिक सहयोग संचालन संस्था अन्तर्योरोपीय क्षेत्र में निरन्तर सद्भावना और पारस्परिक विश्वास को बढ़ाने का पुण्य कार्य करती रहती है ।

पारस्परिकता के इस नूतन वातावरण के कारण ही-‘शूमान योजना’ (Schuman Plan) का जन्म हो सका था । ‘शूमान योजना’ का उद्देश्य पश्चिमी योरप के लोहे तथा कोयले के समस्त साधनों को खानों से ले कर कारखानों और कारखानों से ले कर मंडियों तक एकत्रित करना और सामूहिक रूप से वितरण करना है । इस प्रकार अर्थशास्त्र और राजनीति के पारस्परिक संबन्धों को भी यह बल देती है । इस का प्रस्ताव करते समय फ्रांस के विदेश विभाग ने घोषणा की थी कि ‘संयुक्त योरप का निर्माण केवल एक बार के प्रयत्न से ही नहीं किया जा सकता; इस सारी समस्या पर एक बार ही प्रत्यक्ष प्रहार करने से काम नहीं चलेगा; संयुक्त योरप का विकास तो नित्यप्रति की ठोस सिद्धियों के आधार पर ही हो सकेगा । योरप के राष्ट्रीय एकीकरण के लिये सब से पहले फ्रांस और जर्मनी के सदियों पुराने वैर को दूर करना होगा । कच्चे माल का एक सामान्य भण्डार बना कर तथा एक ऐसी अधिकारी संस्था की स्थापना कर के जिस के आदेश फ्रांस और जर्मनी तथा अन्य

विश्व शान्ति के उपाय

सदस्य राष्ट्रों के लिये अनिवार्यतः मान्य होंगे, यह योजना एक ऐसे वास्तविक योरपीय संघ शासन की नींव डाल सकेगी जो शांति-रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है”

‘शूमान योजना’ के इन राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इस के निम्न आर्थिक उद्देश्यों का आयोजन किया गया है। समस्त सदस्य देशों की मंडियों में कोयले और लोहे की समानता के आधार पर प्राप्ति; आधुनिक ढंग से उत्पादन तथा सामान की अच्छाई का प्रबंध और मजदूरों के जीवन-मापदण्ड में सुधार और इसके स्वामियों के लिए लाभ में वृद्धि।

एक पीढ़ी पहले ‘शूमान योजना’ जैसी बात को कोई सोच भी नहीं सकता था। आज इस पुस्तक के प्रेस में छपने जाने से पहले ही फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, हालैण्ड, बेल्जियम और लज़म वर्ग की सरकारों के प्रतिनिधि इस पर हस्ताक्षर कर चुके होंगे। इस योजना के राजनीतिक उद्देश्य इतना साहसपूर्ण और व्यापक हैं कि वे आसानी से उस योरपीय संघ तक पहुँचने के मार्ग में पड़ शिलाएँ हो सकते हैं जिस को बहुत से लोग योरप के राजनीतिक विकास की एक आवश्यक मंजिल मानते हैं। इस योजना के अन्तर्गत जिन “राष्ट्रोपरि” संस्थाओं का स्थापना की जाने वाली है, वे केवल विभिन्न राष्ट्रों द्वारा खड़ी की गयी व्यापार सम्बन्धी बाधाओं ही को नहीं हटायेंगी वरन् व्यक्तिगत निषेधात्मक व्यापारिक समझौतों को भी भंग कर सकेंगी। ‘शूमान योजना’ की सन् १९२०-३० ई० की उस योरपीय ‘स्टील कार्टेल’ (Steel Cartel) से तुलना कीजिए जिस को उत्पादकों ने और विक्रेताओं ने आपस में मिल कर मंडियाँ बाँटने और ऊँची कीमतें

बनाये रखने के लिए स्थापित कर लिया था और जिस में उत्पादन के बढ़ते रहने के मार्ग में रुकावटें पैदा कर दी थीं ।

योग्यता या क्षमता बढ़ाने या व्यापारिक बाधाओं को दूर करने के स्थान में इस 'कार्टेल' ने योरप के इस्पात उद्योग को मानों काठ में कस रखा था — यही कारण था कि मार्शल योजना के प्रादुर्भाव के समय तक योरप का उद्योग निर्जीव काष्ठ जैसा रूप धारण कर गया था । मार्शल योजना के प्रभाव से ही योरपीय उद्योग नये कला-कौशल को अपना सका है; संयुक्त मंडी की स्थापना कर सका है; संयुक्त मंडी की स्थापना के लिए घट-बढ़ सकने वाली कीमतें अपनाने के लिए, और मजदूरों के लिए अधिक अच्छा वेतन और काम करने की अधिक अवस्थाओं को स्थापित कराने के लिए सामूहिक प्रयत्न कर सका है ।

संक्षेप में यह कहा जाता है कि 'शूमान योजना' कार्टेल विरोधी योजना है । यह पश्चिमी योरप के कोयले और लोहे के उत्पादन को एक दूसरे से मिला कर बढ़ाना चाहती है, उस को विभाजित कर के कम करना नहीं । मेरा यह विश्वास है कि 'शूमान योजना' ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक क्षेत्र में इस प्रकार की समस्त प्रगतियों का सब से बड़ा और स्थायी लाभ यह है कि वे पश्चिमी योरप के निवासियों का राजनीतिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में भी उसी एकता की स्थापना करने के लिए प्रोत्साहित करती है जो वे आर्थिक क्षेत्र में पहले ही प्राप्त कर चुके हैं ।

मेरी राय में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का सब से बड़ा राजनीतिक महत्व इस बात में है कि उसने सहयोग का एक ऐसा मार्ग प्रशस्त कर दिया है जिस पर चल कर अमरीका जैसा शक्तिशाली देश भी एक अपेक्षतया निर्बल राष्ट्र के साथ मिल कर काम कर

विश्व शान्ति के उपाय

सकता है—निर्बल राष्ट्र की स्वाधीनता इस से बाल भर भी कम नहीं होगी। विश्व राजनीतिक इतिहास में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था पहला ऐसा परीक्षण है जिस ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक शक्तिशाली राष्ट्र किसी दुर्बल राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में भाग भी ले सकता है और तब भी उस अपेक्षतया दुर्बल सहयोगी के स्वतंत्र निर्णय के अधिकार को न केवल कोई आँच ही नहीं आती वरन् उस की स्वाधीनता को पूर्णतः सुरक्षित रखा जा सकता है। यह परीक्षण फिलीपीन, इंडोनेशिया और बर्मा में बड़ा उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इन देशों ने अभी-अभी स्वाधीनता पायी है और वे नियंत्रण या आधिपत्य के प्रति उग्र भावनाएँ रखते हैं।

यद्यपि अमरीका स्वभावतः अधिक कार्य-क्षमता का कायल है, आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के अधिकारियों के सामने जब कभी यह प्रश्न पैदा हुआ है कि कार्यक्षमता चाहिए या स्वाधीनता तो उन्होंने ने सदा स्वाधीनता को ही प्रधानता दी है। इस बात पर लंदन के इकानामिस्ट (Economist) नामक पत्र ने विशेष रूप से जोर दिया था। पश्चिमी योरप का आर्थिक पुनरुत्थान प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय वास्तव में बुडरो-विलसन के आत्मनिर्णय सिद्धान्त ही का द्योतक है।

आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के साथ मेरा जो सम्बन्ध रहा है उस में मेरे लिए गर्व की बात यह रही है कि इस से इस सिद्धान्त की पूर्णतः पुष्टि हो गयी है कि जनतन्त्रता को प्रभावशील बनाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय जनतन्त्रता की प्रणाली पर चलते रहना ही है। इसका मतलब यह है कि हम में दो परस्पर विरोधी उग्र मतों के बीच का मार्ग अपनाने की शक्ति अर्थात् विभिन्न दृष्टिकोणों को मान कर एक सामान्य

मार्ग निर्धारित करने की क्षमता होनी चाहिए—ऐसा करने के लिए हम को स्वेच्छाधारी आज्ञाओं का या बलप्रयोग का या धमकी का नहीं बरन् विचार-विमर्श और तर्क का ही सहारा लेना चाहिए। मैंने बहुधा यह अनुभव किया है कि हम लोग अभी तक पूरी-पूरी तरह यह नहीं समझ पाये कि सम्मेलनों की मेजें जनतन्त्रता का कितना प्रभावयुक्त अस्त्र सिद्ध हो सकती हैं। दूसरों में आत्म-सम्मान की भावना जगाना और एक दूसरे के विचारों और हितों का आदर करना ही राजनीतिक नयस्कता का प्रमाण है। जब कभी मैं सोचता हूँ कि आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के कार्यकर्ताओं ने अपने चरित्र द्वारा इस राजनीतिक प्रौढ़ता का परिचय दिया है तो मैं गद्गद हो जाता हूँ। हमने विदेशों को खाद्य-पदार्थों और यंत्रों की जो सहायता दी है, इस संस्था के कर्मचारियों के इस प्रकार के आचरण ही ने उसको सफल बनाया है। मुझे इस में कोई सन्देह नहीं कि हमको अपने आन्तरिक राष्ट्रीय झगड़ों को दूर करने का जो अनुभव प्राप्त है, हमारी घरेलू राजनीति में आदान-प्रदान सिद्धान्त का जो सार है, उससे हमको विश्व राजनीति में नये कार्य करने की अमूल्य योग्यता प्राप्त है।

हमने योरप में यह सीख लिया है कि हमको एशिया में क्या करना है, क्योंकि मार्शल योजना द्वारा हमने विश्व राजनीति में सफल नीति बरतने के साधन प्राप्त कर लिये हैं। योरप में जहाँ हम को टरबाइन (Turbine) और ट्रैक्टर देने की चिन्ता थी, एशिया में हम को रोग निवारक ओषधियों और खाद का प्रबंध करना है। किन्तु राजनीतिक सिद्धान्त दोनों जगह एक ही हैं। उन लोगों में जिन्होंने अभी यह निर्णय नहीं किया कि तानाशाही का मायाजाल अच्छा है या स्वतन्त्रता-

विश्व शान्ति के उपाय

पूर्ण जीवन; यह निर्णय करने में जनतंत्रता की ठोस रचनात्मक कार्य-वाहियाँ ही सहायक हो सकती हैं।

निश्चय ही मैं यह नहीं चाहता कि किसी को यह धारणा हो जाय कि राजनीतिक मोरचे पर चलने वाले शान्ति संघर्ष के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाली समस्त समस्याओं का उत्तर हम ढूँढ़ चुके हैं। क्योंकि हम ने काम ही इतनी देर बाद शुरू किया था, हम ऐसा नहीं कर सके हैं; अभी तक तो हम हवावल रूपी कुछ योजनाएँ ही तय कर सके हैं, और कुछ के लिए केवल सही प्रकार के प्रश्न करना ही सीखे हैं। विश्व-नेतृत्व अभी हमारे लिए नयी बात ही है। अभी तो हम अपने शान्ति संघर्ष को सफल बनाने के लिए निश्चयात्मक विदेश नीति को स्पष्ट करने तथा उस को कार्यान्वित करने के लिए किस माध्यम की आवश्यकता है यह तय करने में ही संलग्न हैं।

मुझ को विश्वास है कि कांग्रेस, सरकार और जनता यह समझती हैं कि हमारे सामने जो काम पड़ा है उसको पूरा करने के लिए तुरन्त कन्धा लगा देना कितना आग्रहपूर्ण एवं महत्वपूर्ण कर्तव्य है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि अब यह विवाद करने की गुंजाइश नहीं कि हम को क्या करना चाहिए और क्या नहीं। या तो हम इस काम को तुरन्त एवं दक्षतापूर्ण ढंग से करेंगे नहीं तो रसातल को चले जायेंगे; संकट मुँह खोले सामने खड़ा है, और हमारे पास समय बहुत ही थोड़ा है।

आठवाँ परिच्छेद

शान्ति और सूचना

मैंने अपने जीवन का अधिकांश भाग सामान बनवाने, बाजारों का अध्ययन करने और अपनी कम्पनी के लिए अधिक से अधिक ग्राहक पाने की योजनाओं के बनाने में व्यतीत किया है। मैं सदा एक धारणा पर काम करता आया हूँ और वह यह है कि यदि बाज़ार को अपने हाथ में रखना है तो समान अच्छा होना चाहिए। इसी धारणा के कारण बहुत वर्षों तक मैं कम्युनिज़्म के प्रति उपेक्षा की भावना बनाये रहा था। एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में कम्युनिज़्म मेरी दृष्टि में प्रगतिशील नहीं बरन् प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त है। रूस में इस पर जिस प्रकार व्यवहार किया गया है उस का परिणाम यह हुआ है कि वहाँ की जनता पुराने अत्याचार के स्थान में एक अति परिष्कृत किन्तु अति भयंकर दासता-पाश में जकड़ी जा चुकी है। मैं समझता था कि रूस के शासक बाहर तो क्या अपने देश में भी “बाजार” को सम्हाले न रह सकेंगे।

जब सन् १९४३ ई० की हेमन्त ऋतु में मैं योरप गया तो मेरा यह सुख स्वप्न भंग हो गया। मैंने अपनी आँखों से इटली, फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी में लाखों ऐसे आदमी देखे जिन का यह विश्वास था

कि जगतंत्रता की अपेक्षा कम्युनिज़म उनके लिए कहीं अधिक श्रेयस्कर है। निस्संदेह मैंने यह स्वीकार किया कि बहुत दूर तक इस प्रकार की भावनाओं का कारण वह युद्धोत्तर स्थिति है जिस ने अधिकांश नागरिकों को नैराश्य के गर्त में ढकेल रखा है। कम्युनिस्ट दिंडोरची उन के कष्ट से अनुचित लाभ उठाने पर तुले रहे हैं और सदा उन को यह सब्ज बाग दिखाते रहे हैं कि यदि वे कम्युनिज़म को अपना लें तो उन के अभावजनित कष्ट का अन्त हो जायगा और पेट भरने के लिए रोटी और सुरक्षा प्राप्त हो सकेगी। इस बगुला भक्ति को निर्धन जनता में अधिक प्रभावकारी ढंग से काम में लाया गया है। किन्तु यह सब कुछ स्वीकार करने के बाद भी यह कहना गलत होगा कि केवल निर्धनता ही के कारण लोग कम्युनिज़म की ओर आकर्षित होते हैं; क्योंकि कम्युनिस्टों में बहुत से बुद्धिजीवी, वकील, प्रोफेसर, डाक्टर तथा अनेक पैसे वाले लोग भी हैं। ज्यों-ज्यों मैंने इस समस्या का अध्ययन किया त्यों-त्यों मुझ को पता लगता गया कि पश्चिमी योरप में कम्युनिज़म की सफलता का सब से बड़ा कारण यह है कि सोवियट रूस की प्रचार व्यवस्था में सभी वर्गों के पक्षपातों और भावनाओं के उपयुक्त नारे और आवाजें हैं।

कम्युनिज़म की घातक विशिष्टता यह है कि यह अपने स्वार्थ के लिए मानवजाति की स्वाधीनता और सहयोग की गहरी भावनाओं से अनुचित लाभ उठाता है। अपनी बर्बरता, विश्वासघात और युद्ध-प्रियता को छिपाने के लिए यह बन्धुत्व और शान्ति के धार्मिक वाक्यों का प्रयोग करता है। इसके प्रचार के मुकाबले में तो डाक्टर गेवल्स और इटली के प्रख्यात कूटनीतिज्ञ मैकियावली भी निरे बच्चे ही दिखायी देते हैं।

जैसे ही मैंने इस चौंका देनेवाले सत्य का अनुभव किया तैसे ही मुझको बड़े दुःख के साथ यह भी स्पष्ट दिखायी देने लगा कि यदि कम्युनिज़्म के प्रवाह को रोकना है तो संसार के स्वतन्त्र देशों को जनता की जीवन-सम्बन्धी अवस्थाओं को—विशेषतः उन वर्गों की अवस्थाओं को जो सुविधाहीन और अधिकारहीन हैं—सुधारना ही न होगा अपितु इस के शासकों के मिथ्या प्रचार के उत्तर में सत्य का प्रचार भी करना होगा ।

अधिकांश अमरीकावासी 'प्रचार' शब्द को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उसे बुरी बात समझते हैं । हमारे मस्तिष्क में इसका झूठ और धोखे से ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि हम इसको जनतन्त्रता का नहीं तानाशाही शासकों ही का अस्त्र मानने लगे हैं । हिटलर और स्टालिन ने जिस प्रकार इसका प्रयोग किया है उससे यह महान् असत्य ही का दूसरा नाम समझा जाने लगा है । फिर भी प्रचार शब्द का यही तो अर्थ नहीं है । आरंभ में इस शब्द का अर्थ किसी विचार या विश्वास का प्रसार मात्र ही था । उस प्रारम्भिक अर्थ को ध्यान में रखें तो इस शब्द से रचनात्मक और नैतिक काम भी उसी तरह लिया जा सकता है, जैसे उससे ध्वंसात्मक और अनैतिक कार्य लिया जा रहा है । हमको "प्रचार" शब्द से अच्छा ही अर्थ समझना चाहिए । मैं यह जानता हूँ कि कॉंग्रेस में और हमारी जनता में प्रचार और सूचना शब्दों के अर्थों के प्रति बड़ा भ्रम फैला हुआ है । इस भ्रम को दूर करने के लिए तथा इन दोनों शब्दों का सही-सही अर्थ समझने के लिए मैं "न्यूयार्क टाइम्स" के रविवार संस्करण के सम्पादक श्री लेस्टर मार्केल द्वारा की गयी परिभाषा की सिफारिश करता हूँ । उनका कहना है कि दोनों शब्दों को इस प्रकार के प्रयोग में लाया जाता है जैसे दोनों एक दूसरे के प्रतिकूल

विषय शान्ति के उपाय

अर्थ रखते हों। इन दोनों के अर्थों में जो अन्तर है वह स्पष्ट और साधारण नहीं है। इस अन्तर को मोटे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

“सूचना का अर्थ है वास्तविक घटनाओं और मतों का प्रसार ताकि ज्ञान वृद्धि हो सके; प्रचार का अर्थ है वास्तविक (अथवा अवास्तविक) घटनाओं और मतों का प्रसार ताकि किसी को प्रभावित किया जा सके।

“सूचना प्रकटतः शान्त, तर्कपूर्ण और भावशून्य होती है; प्रचार उत्तेजनात्मक, भोजपूर्ण, अत्यन्त भावुकतात्मक होता है। किन्तु दोनों में जो अन्तर है वह इतना सरल नहीं है। एक ओर प्रचार जहाँ अति शान्त ढंग से किया गया मिथ्या प्रचार ही हो सकता है; तो दूसरी ओर सत्य ही को जब शान्त और निःस्पृह ढंग से पेश किया जाय तो वह अवास्तविकतापूर्ण किन्तु भोजस्वी शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है।”

यद्यपि “प्रचार” और “सूचना” के बीच जो अन्तर है वह बहुधा छुप जाया करता है; श्री मार्वेल का कहना है कि हमको वर्तमान संघर्ष में, जिसका उद्देश्य विभिन्न देशों की जनता के मस्तिष्क और हृदय को अपनी ओर आकर्षित करना है, दो बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए:—

(१) घरेलू नीति में हमको अपनी जनता के समक्ष स्पष्ट रूप से उन सब घटनाओं और कारणों को रखना चाहिए जो विदेश नीति में किसी कार्य विशेष को करते समय हमारे ध्यान में थीं। ऐसा करने से हमारी जनता हमारी विदेश नीति के ध्येय से परिचित होगी। इसको सूचना सम्बन्धी कर्तव्य कह सकते हैं, क्योंकि इसका अभिप्राय ज्ञान-वृद्धि है।

(२) विदेशों में हमको इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे लोग हमारी बात को अच्छी तरह समझें जिसके लिए हमको अपनी बात और अपने ध्येय को भागे बढ़ाने के लिए अपने उद्देश्यों का बल्लेख स्पष्ट और प्रत्यक्ष ढंग से करना चाहिए । इसको प्रचार कार्य कहा जा सकता है क्योंकि इसका अभिप्राय लोगों को प्रभावित एवं आश्वस्त करना है ।

जहाँ तक लोगों को प्रभावित और आश्वस्त करने का सम्बन्ध है हम को रूस के शासकों से एक ऐसी बात से जिसको हम अपने लिए अभी पूरी तरह से स्पष्ट नहीं कर पाये हैं बड़ी सहायता मिलती है । उन के पास एक ऐसा सिद्धान्त है या कहिए एक ऐसी वस्तु है जिस को वह चलाना चाहते हैं ।

इस सिद्धान्त का प्रादुर्भाव मार्क्स और एंगिल्स के अध्ययन से होता है । मार्क्स और एंगिल्स ने कल्पना की थी एक ऐसे समाज की जिस में वर्ग भेद नहीं होगा; जिस में राज्य व्यवस्था "विलीन" हो जायगी और जिस में लोग शान्ति और भ्रातृत्व के वातावरण में जीवन-यापन करेंगे । इन सिद्धान्तों को लेनिन और स्टालिन ने व्यवहार में जो रूप दिया है उस ने एक ऐसे अधिनायकवाद को जन्म दे दिया है जिस में मुठ्ठी भर चुने हुए लोग वर्बरता और निर्ममता के साथ शासन करते हैं । इस वास्तविकता के होते हुए भी मार्क्स के सिद्धान्तों को प्रचारित करने में कम्युनिस्टों ने कभी कमी नहीं दिखायी । इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए रूस के शासकों ने एक विस्तृत यंत्र तैयार किया है । इस काम के लिए चतुर लोगों का एक समूह तैयार किया गया है तथा प्रचुर धन-राशि संचित की गयी है । इसका अभिप्राय एक ओर रूस तथा उस के पिछू देशों की जनता के विचारों को अपने

विश्व शांति के उपाय

नियंत्रण में रखना है तो दूसरी ओर बाहर की दुनियाँ में जनता की विचारधारा को दूषित करना है। रूस की नीति का यही मुख्य अंश है और इस का संचालन कम्युनिस्ट पार्टी के “आंदोलन एवं प्रचार विभाग” के तत्वावधान में होता है। लेनिन और स्टालिन दोनों ही ने इस के कार्यक्रम और कला-कौशल को परिमार्जित करने के लिए बड़ा प्रयत्न किया है।

केवल एक ही देश में यानी फ्रांस में किस प्रकार इस विशाल यंत्र का काम चलता है इसी को देखने से इस की असलियत का पता चल जाएगा। फ्रांस एक ऐसा देश है जहाँ रूस के शासकों ने आन्तरिक अतिक्रमण द्वारा विजय प्राप्त करने के लिये सब से बड़ी बाजी लगा रखी है।

फ्रांस की जनसंख्या अमरीका की जनसंख्या की एक तिहाई से भी कम है और वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य संख्या अमरीका की कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य संख्या से दस गुनी से भी अधिक है। ऐसे कम्युनिस्ट सदस्यों की संख्या जिन को कठोर, सक्रिय तथा पूर्णतः संलग्न कहना चाहिये २५०,००० है। साधारण सदस्यों की संख्या ६-७ लाख है। ये लोग रूस के लिये नित्य प्रति प्रचार करने के लिये एक सुदृढ़ केन्द्र सा बनाये हुए हैं। फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी भी संसार की अन्य कम्युनिस्ट पार्टियों की भाँति रूस की विदेश नीति का एक अंग मात्र है और रूस के शासकों का उस पर पूर्ण अधिकार है।

कम्युनिस्टों ने बड़ी सूक्ष्म के साथ अपनी रण-नीति तैयार की है। वे फ्रांस के प्रत्येक सामाजिक वर्ग की शिकायतों से लाभ उठाते हैं; एक वर्ग और दूसरे वर्ग के बीच भेद-भाव उत्पन्न करते हैं; कहीं वे स्त्रियों की संस्थाएँ बनाते हैं तो कहीं पुराने सैनिकों का संगठन करते हैं। कहीं

पुराने फासिस्ट विरोधी लोगों को एकत्रित करने का ढोंग करते हैं तो कहीं बम वर्षा से कष्ट पाये हुए परिवारों की जमात तैयार करते हैं। कहीं ये उन विधवाओं को जिन के पति युद्ध में मारे गये थे, तो कहीं निर्वासितों की; और कहीं गत महायुद्ध में बंदी होने वाले लोगों को संगठित रहते हैं। कहीं वे किरायेदारों की जमात बनाते हैं, कहीं विभिन्न परिवारों का कोई मंडल तैयार करते हैं या खेल-कूद के लिए अखाड़े बनाते हैं और कहीं तो शिकारियों और मछली मारने वालों के ही क्लब संगठित करते करते रहते हैं। जार्ज आरवेल ने अपनी "१९८४" नामक पुस्तक में जिस विभीषिका का चित्र खींचा है उसके कितना निकट है, यह सब, इस का पता उन के षड्यन्त्रों से तथा इधर की बात उधर पहुँचाने की चालों से चलता है; कभी वे चाबियाँ चुरवा लेते हैं, डाक उड़वा लेते हैं और कई बार तो वह स्त्री जिसे आप अपने घर की सचाई और देख भाल के लिए रखते हैं उन के लिए जासूसी करती हैं जो धूर्तता वश 'पार्टी' के लिए रुपया ऐंठने का भी प्रबन्ध करती रहती है। फ्रांस के सामाजिक जीवन में इस प्रकार की सभा-संस्थाओं और संगठनों ने वातावरण इतना दूषित कर दिया है कि सांस तक लेना दूभर है।

फ्रांस के सब से बड़े मजदूर संगठन सी० जी० टी० (C.G.T.) पर इस पार्टी का अधिकार है। पिछले दो वर्षों में इस की सदस्य संख्या में काफी कमी हुई है किन्तु अब भी साढ़े बाईस लाख स्त्री-पुरुष इस के सदस्य हैं और इन में से अधिकांश ऐसे कल-कारखानों में काम करते हैं जो आर्थिक और सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व पूर्ण हैं। यद्यपि सी० जी० टी० के नेतृत्व की बागडोर कम्युनिस्टों के हाथ में है, इस के साधारण सदस्यों के बारे में यह समझना कि वे शत-प्रतिशत कम्युनिस्ट

विश्व शान्ति के उपाय

हैं, ग़लत है। वास्तव में कम्युनिस्ट पार्टी और सी० जो० टी० की सदस्य संख्या में परस्पर क्या अनुपात है यह कहना कठिन है। किन्तु मज़दूरों के नाम पर आवाज़ लगाने वाले जो समाचार पत्र हैं उन की रोषपूर्ण वाणी से सभी परिचित हैं। फ्रांस में साधारण समाचार पत्र भी कम्युनिस्टों के प्रचार के शक्तिशाली साधन हैं। कम्युनिस्टों के अपने ही दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र हैं। प्रत्येक प्रभावशाली सामाजिक वर्ग के लिए अलग-अलग पत्र-पत्रिकाएँ हैं। उदाहरण के लिए किसानों के लिए, बुद्धिजीवियों के लिए ज़हाज़ी मज़दूरों के लिए, पादरियों के लिए, युवकों के लिए, स्त्रियों के लिए और पैरिस वालों के लिए। प्रत्येक प्रदेश-विशेष के लिए विशिष्ट प्रकाशन हैं—यहाँ तक कि कहीं-कहीं तो नगर-नगर के लिए अलग-अलग समाचार पत्र हैं। अलसास लारेन में कम्युनिस्ट पार्टी के पत्र जर्मन भाषा में निकलते हैं तो उधर भूमध्य सागर के तट पर रहने वाले लोगों के लिये विशेष संस्करण छापे जाते हैं और ग्रेनोविल के निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेश के लिए अलग पत्र। कम्युनिस्टों के बड़े-बड़े दैनिक पत्र, सचित्र पत्रिकाएँ हैं, राजनीतिक ट्रेड हैं और सनसनीपूर्ण घासलेटी पत्र हैं। सम्भवतः कम्युनिस्टों के हाथ में सब से अधिक शक्तिशाली प्रचार शस्त्र पत्रकार संस्था है जिस को हाल में ही “फ्रांसीसी संवाददाता संघ” (L' Union d' Information Francaise) के नाम से स्थापित किया गया है। इस संस्था द्वारा कम्युनिस्टों के विभिन्न पत्रों में ताल-मेल रक्खा जाता है। यदि वे चाहें तो कुछ क्षणों में ही सारे देश में जैसी चाहें वैसी अफवाहें फैला सकते हैं।

कम्युनिस्टों की बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएँ छद्म वेश में काम करती हैं इसलिए उनकी सूची तैयार करना आसान काम नहीं है। कहीं वे

सिलाई की शिक्षा देने का ढोंग रचने हैं तो कहीं फुटबाल की टीमों की मैचों के परिणामों की भविष्यवाणी करने का। कुल मिला कर कम्युनिस्टों के १०० से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ हैं। इन में कम से कम ४० तो केवल पैरिस ही में हैं। इन सब में रूस के समर्थन में एवं अमरीका और मार्शल योजना के विरोध में प्रचार रहता है। इसके अतिरिक्त भाषणों, सभाओं तथा व्यक्तिगत सम्पर्कों द्वारा भी यही काम चलता रहता है। कहीं वे शान्ति के नाम पर प्रदर्शन करते हैं, कभी किसी का जन्म दिन मनाते हैं, कभी किसी मजदूर संस्था की ओर से 'पिकनिक' मनाने के बहाने ही प्रचार कार्य करते रहते हैं। बाज़ार में, ज़मीन के नीचे चलने वाली रेलगाड़ियों के प्लेट फार्मों पर, विश्राम गृहों पर जिधर देखिये उधर कम्युनिस्टों के इशितहार नज़र आते हैं। उनकी अपनी किताबें हैं, अपनी फिल्में हैं और बहुधा विभिन्न व्यक्तियों द्वारा देश में यत्र तत्र सर्वत्र भाषणों का प्रोग्राम जारी रहता है। उनकी योजनाओं की गिनती करना सम्भव नहीं।

उनके पास पैसा कहाँ से आता है इसके विषय में कुछ जानकारी अवश्य है किन्तु उसके अधिकांश भाग के विषय में नहीं। यह निश्चित ही है कि जितना वे खर्च करते हैं उसमें और उनकी प्रत्यक्ष भाय में जो अन्तर है उसको रूस ही पूरा करता है। संजीदा लोगों का अनुमान है कि फ्रान्स की कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिवर्ष ५ से ६ अरब फ्रांक या १ करोड़ ५० लाख से १ करोड़ १० लाख डालर खर्च करती है।

संसार के स्वतन्त्र देशों को इसी प्रकार के व्यापक एवं सावधानी पूर्वक संयोजित और संलग्नतापूर्वक कार्यान्वित एवं ठीक समय पर संचालित किये जाने वाले प्रचार-युद्ध का सामना करना है।

तब किस प्रकार संसार के स्वतन्त्र देश कम्युनिस्टों के प्रचार के

जाल को हटा कर जनता के मस्तिष्क को उसके प्रभाव से उन्मुक्त कर सकते हैं ? सब से पहले संसार के स्वतन्त्र देशों को एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करना होगा जो स्वतन्त्रता-प्रेमी नर-नारियों के आदर्श और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित कर सके। इसके पश्चात् हम को ऐसे उपयुक्त शब्दों की खोज करनी होगी जो इस सिद्धान्त को समुचित ढंग से व्यक्त कर सकें अर्थात् हम को ऐसे शब्द ढूँढ़ने होंगे जो स्वर्गीय कवि किपलिंग के शब्दों में “मानव प्राणियों के हृदयों में विचरण कर सकें।”

मेरा यह विश्वास है कि स्वतन्त्र संसार के इस सिद्धान्त को उपयुक्त कलेवर प्रदान किया जा सकता है और उन लोगों को जो स्वाधीनता को एक सहज ही प्राप्त होने वाली वस्तु मान कर अकर्मण्य हो गये हैं पुनः कर्मकांड के लिए प्रेरित किया जा सकता है तथा उन के विश्वास को पुनः प्राप्त कर सकते हैं जो इस समय दासता की शृंखला में जकड़े हुए गिड़गिड़ा रहे हैं। इसी सिद्धान्त को निर्धारित करने के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि हमारी उस बपौती का जो हमने अतीत से पायी है पुनः उल्लेख किया जाय। हम ने ‘मेगना कार्टा’, स्वाधीनता घोषणा (डिक्लेरेशन आफ इंडिपेन्डेन्स) को बपौती स्वरूप प्राप्त किया है। ‘मेगना कार्टा’ और ‘डिक्लेरेशन आफ इंडिपेन्डेन्स’ के निर्माताओं ने, कनफूसियस, प्लेटो और सबसे अधिक ईसामसीह से जिन्होंने ‘सरमन आन दि माउंट’ प्रदान किया था, प्रेरणा पायी थी। हमारे स्वतन्त्र संसार सिद्धान्त के चार भाग होने चाहिए।

धार्मिक—धार्मिक क्षेत्र में हमारे इस सिद्धान्त को यह घोषणा करनी चाहिए कि पूजा की स्वाधीनता, व्यक्ति का आदर और मानव-बन्धुत्व इस का अभीष्ट है।

राजनीतिक—राजनीतिक क्षेत्र में हम को यह तय न कर के कि कहाँ किस प्रकार की सरकार होनी चाहिए उन नागरिक स्वाधीनताओं पर जोर देना चाहिए जो अमरीका के विधान के संयोजकों ने पश्चिमी संसार की संचित विद्वत्ता के सार के रूप में पायी थी ।

आर्थिक—आर्थिक क्षेत्र में हम को सामाजिक दृष्टि से अमरीका की उस सचेत पूँजीवादी व्यवस्था के शब्दों में अपना अभीष्ट बताना होगा जिसके विकास के विषय में दुनिया को बहुत कम जानकारी है । इस व्यवस्था की विशेषता यह है कि इस में स्वामित्व व्यापक रूप प्राप्त कर चुका है । नेतृत्व, निर्णय और उद्योगों का निर्देशन किसी एक व्यक्ति-विशेष के हाथ में न हो कर उत्तरोत्तर अधिकाधिक लोगों के हाथ में आता जा रहा है और उससे होने वाले लाभों का उपयोग अधिकाधिक व्यक्ति करने लगे हैं । अमरीका में पूँजीवाद कही जाने वाली समाज व्यवस्था में नेतृत्व, निर्णय और उद्योग का अधिकार अधिकाधिक विस्फारित होता जा रहा है ।

सामाजिक—सामाजिक क्षेत्र में हमको मानवता की भावना जगानी है जिससे अभिप्रेरित हो कर हम इस प्रकार के वैयक्तिक और सामाजिक साधन ढूँढ़ने में संलग्न हों जिन से आर्थिक; शिक्षा-संबंधी एवं सांस्कृतिक विकास के अवसर सब को समान रूप से उपलब्ध हों, और उत्तरोत्तर प्राचुर्य प्राप्त करते रहें । दूसरे शब्दों में हम को उस माध्यम की ओर ध्यान आकर्षित करना है जो व्यक्ति

को सामान्य संकटों से संरक्षण प्रदान करे; हो सकता है कि कहीं इस संरक्षण को अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास द्वारा सम्पादित किया जाय तो कहीं सामाजिक सुरक्षा द्वारा और कहीं विभिन्न उद्योगों द्वारा या पेंशन आदि की योजनाओं द्वारा ।

स्वतंत्र संसार को अपने इस सिद्धांत की परिभाषा करने के पश्चात् दूसरा कदम यह उठाना चाहिए कि प्रत्येक संभावित साधनों से प्रचारित किया जाय ।

हमको एक बार फिर यह प्रयत्न करना चाहिए कि अमरीका दूसरे देशों को स्वयं अपनी सहायता करने में मदद दे सके । किन्तु हमको कभी भी अवैले ही इस कार्य को सिद्ध करने का यत्न नहीं करना चाहिए । जहाँ तक संभव हो सके प्रत्येक देश में उसी देश विशेष के नागरिक प्रचार कार्य करें तो इस सिद्धान्त का आकर्षण बढ़ जायगा । यह बात स्वतंत्र देशों और "लौह पट्ट" (Iron Curtain) के पीछे के देशों पर समान रूप से लागू होती है । यदि फ्रांस में अमरीका-वासियों के स्थान में फ्रांस वाले ही अपने देशवासियों के समक्ष इस सिद्धान्त को रखें तो उनको इस स्वाधीनता सिद्धान्त को अंगीकार कराने में अधिक सफलता मिलेगी चाहे उनके श्रोता वामपक्ष के उग्रवादी हों या दक्षिणपक्ष के उग्रवादी । इसी प्रकार पोलैंड की जनता में स्वाधीनता की भावना को सर्जाव और सशक्त बनाये रखने में पोलैंड के निवासी ही अधिक सफल हो सकते हैं—चाहे वे पोलैंड में रह कर काम करें या पोलैंड के बाहर ।

अमरीका का अपनी सीमाओं के बाहर भी इस क्षेत्र के संबंध में भारी दायित्व है । स्वतंत्र संसार का नेता होने के नाते इस को वाणी

और कर्म द्वारा संसार के सभी देशों के लोगों को यह विश्वास दिला देना है कि यह उस आदर्श के प्रति संलग्न है जो समस्त मानव प्राणियों के लिए स्वाधीनता, शान्ति और जीवन की संपूर्णता का स्रोतक है।

एक प्रकार से हमारा प्रचार हमारे कार्यों द्वारा ही होना चाहिए। योरप में मार्शल योजना, दक्षिण पूर्वी एशिया में हमारा वर्तमान कार्यक्रम और चार सूत्री योजना, हमारे सब से प्रभावशाली साधन हैं। किन्तु इन कामों की जानकारी बढ़ाने के लिए समुचित ताल मेल के साथ प्रचार करना होगा—इस प्रकार प्रचार की दिशा का निर्देशन अपनी विविधता में जितना कल्पनात्मक हो, अभीष्ट प्रभाव की दृष्टि से उतना ही वेगपूर्ण भी होना चाहिये।

मैं ने पिछले किसी परिच्छेद में उस स्थिति का उल्लेख किया था जो हम को मार्शल योजना को संचालित करते समय कमिन्फार्म द्वारा उत्पन्न किये गये विघ्नों के कारण देखनी पड़ी थी। निस्संदेह जहाँ तक मार्शल योजना का संबंध था इस का सिद्धांत स्पष्ट था—यह स्पष्टतः योरप में पुनः शक्ति एवं आत्मविश्वास का संचार करने के उद्देश्य से निर्मित की गयी थी और किसी भी दृष्टि से देखने से यह एक सराहनीय योजना थी। किंतु हमारे पास अपनी बात कहने के लिए उस समय हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं थे।

आरंभ में हम को यह खयाल नहीं था कि हम आर्थिक सहयोग संचालन संस्था वालों को किसी बड़े सूचना विभाग की आवश्यकता पड़ेगी। हम ने सोचा था कि विदेश जाने वाले प्रत्येक मिशन को एक या दो सूचना अधिकारियों की आवश्यकता पड़ेगी जो अपने मिशन के विषय में प्रेस को वक्तव्य दे सकें; सम्पादकों से सम्पर्क रख सकें और

विश्व शान्ति के उपाय

यहाँ अपनी प्रगति के विषय में सूचना दे सकें। हम को शीघ्र ही पता लग गया कि इस क्षेत्र में हमारे प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध काम करने के लिए कम्युनिस्टों के पास औसतन ५० व्यक्ति थे। हम को जल्दी ही यह भी पता चल गया कि अपनी बात विदेशों की जनता तक पहुँचाने के लिए हमको 'मिमियोग्राफी' की मशीनों से भी अधिक किसी और बात की आवश्यकता है। तभी कहीं हमारी बात सुनी जा सकेगी तथा लोकप्रिय हो सकेगी।

हमने समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो स्टेशनों, और फ़िल्मी दुनियाँ से उच्चकोटि के लोग भरती किये। जैसे ही हमने वाशिंगटन के योग्य एवं ओजस्वी व्यक्ति श्री बाब मुलेन (Bob Mullen) और पैरिस से रोस्को ड्रमंड (Rosco Drummond) की अध्यक्षता में अपने स्टाफ़ को तैयार किया तभी हमको पता लगा कि हमारा बजट, कांग्रेस के सुद्ध समर्थन से २, ०००, ००० डालर से बढ़ाकर १७, ०००, ००० डालर कर दिया गया है।

मार्शल योजना की चलती फिरती प्रदर्शिनी, जिसके द्वारा योरप के करोड़ों नर-नारियों को इस योजना की जानकारी प्राप्त हुई, इस बात का उदाहरण है कि हम को प्रत्येक देश में किस प्रकार के प्रचार कार्य की आवश्यकता है। "योरप का स्वनिर्माण" शीर्षक से यह सर्वांगपूर्ण प्रदर्शिनी इस समय पश्चिमी योरप में ६००० मील का लम्बा भ्रमण कर रही है। इसके पास अपने ही डेरे और तम्बू हैं, अपनी ही फ़िल्में हैं और कठपुतलियों के तमाशे जो विभिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं में ही पेश किए जाते हैं। फ्रांस, बेलजियम, डेनमार्क, जर्मन और स्वीडन में इसका प्रदर्शन किया जा चुका है। योरप ने एकीकरण की दिशा में अब तक जो प्रगति की है इस प्रदर्शिनी से इस बात का पता चल जाता

है, साथ ही यह भी ज्ञात हो जाता है कि योरप में २७४, ०००, ००० नरनारी सम्मिलित हो कर एक दूसरे के उपयोग की सामग्री तैयार कर के एक दूसरे को स्वतंत्रता पूर्वक दे-ले सकें तो अपने जीवन-मापदण्ड को ऊँचा और स्थायी शान्ति की स्थापना करने के लिए क्या कुछ कर सकते हैं ।

‘योरप का स्वनिर्माण’ प्रदर्शिनी की एक अत्यन्त प्रभावकारी विशेषता यह है कि इसकी ओर से योरप के उस वायुमंडल में जो अभी तक स्वतंत्र है लाखों गुब्बारे छोड़े जा चुके हैं; रंग-विरंगे और हाइड्रोजन से भरे ये गुब्बारे लगभग एक फुट व्यास के होते हैं । प्रत्येक गुब्बारे के अन्दर एक कार्ड होता है जिस पर भेजने वाले का नाम लिखा रहता है; यह एक योरपवासी की ओर से दूसरे योरपवासी के प्रति मित्रता एवं शुभकामना का संदेश है । जब मार्शल योजना का काफ़ला डेनमार्क में था तो ७०, ००० ऐसे गुब्बारे छोड़े गये थे; उनमें से प्रत्येक के साथ जो संदेश भेजा गया था उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

इस गुब्बारे के साथ आप के लिए एक ऐसे शान्ति प्रिय डेनमार्कवासी मित्र की ओर से अभिवादन प्रेषित किया जा रहा है जिस ने कोपेनहेगेन में ‘योरप स्व-निर्माण’ नामक प्रदर्शिनी देखी है ।

यह गुब्बारा मार्शल योजना वाले १८ देशों के जनतंत्रता प्रेमी नागरिकों की शान्ति और समृद्धि की आशा का प्रतीक है ।

हम सब जिन विचारों और सामग्री को उपलब्ध करने के लिए प्रयत्नशील हैं यह गुब्बारा उनके स्वतंत्र रूप से लेन-देन की प्रवृत्ति का सूचक है; हमारी आशा है कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब एक देश के नागरिक और सामान दूसरे देश में उतनी स्वच्छन्दता से विचरण

कर सकेंगे जैसे ये गुब्बारे विभिन्न देशों की भूमि और समुद्र के ऊपर घूमते हैं ।

मार्शल योजना जनतंत्रात्मक शान्ति की योजना है

कुछ गुब्बारे तो दो सौ, तीन सौ और पाँच सौ मील तक उड़ते चले गये और उनमें से अनेक पूर्वी जर्मनी, पोलैंड और हंगरी में भी जा गिरे; कुछ आस्ट्रिया पहुँचे तो कुछ चेकोस्लोवेकिया को; और कुछ लिथुआनिया तक चले गये ।

“लौह पट्ट” के ऊपर से उड़ते हुए जब ये सत्य की झलक के प्रतीक गुब्बारे उस ओर के देशों में चले गये तो कम्युनिस्टों में उनके प्रति निम्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुई ।

१. सरकारी प्रवक्ताओं ने जनता को सावधान किया कि इन गुब्बारों या उन में पाये जाने वाले सन्देशों को छूना खतरे से खाली नहीं है; ये विस्फोटक पदार्थ हैं ।

२. जिन्होंने इनको पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया उन की सार्वजनिक रूप से प्रशंसा की गयी ।

३. कम्युनिस्टों के समाचार पत्रों और रेडियो ने अमरीका के विरुद्ध विष उगला और कहा कि पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने इन गुब्बारों के संदेशों की छपाई में विषैले कीटाणु मिला दिये हैं । कभी कहा गया कि इन गुब्बारों को इसलिए छोड़ा गया है कि इन से आकाश में वायु की दिशा का पता लगाया जा सके, ताकि बाद में योरप के विरुद्ध विषैली गैस का प्रयोग किया जा सके ।

“लौह-पट्ट” के दूसरी ओर अन्य प्रकार की भी प्रतिक्रियाएँ हुई । हंगरी, पोलैंड तथा अन्य देशों से इस ओर के कुछ मित्रों के पास कुछ पत्र आये । उनमें से कुछ आर्थिक सहयोग संचालन संस्था की विभिन्न

संस्थाओं के पास पहुँच गये। किसी ने अपने पत्र में लिखा था, “मैं यह पत्र आप के पास गुप्त रूप से भेज रहा हूँ।” एक अन्य पत्र में जो अन्य पत्रों का नमूना स्वरूप था, कहा गया था, “आपका गुब्बारा बहुत दूर तक उड़ आया। यह इतनी दूर आ गया है कि जहाँ जिन विचारों के समर्थन के लिये आप प्रयत्नशील हैं उन के विषय में कोई बोलता तक नहीं या बोल सकता तक नहीं; किन्तु कितनी उत्कट अभिलाषा है हम सब की कि वह दिन कब आयेगा जब सब योरपवासी एक परिवार की भाँति रह सकेंगे। यह न समझना कि योरप की सीमा लौह पट्ट पर आ कर ही समाप्त हो जाती है।” अन्य पत्रों में भी ऐसी ही कहानी थी—निराशा और भय की कहानी, किन्तु फिर भी एक ऐसी कहानी जिसमें आशा की झलक मौजूद थी।

इससे और मार्शल योजना के अन्य प्रकरणों से—मैं उन व्यापक अनुसंधानों का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ जो हमने बाहर के लोगों से कराये थे—मैं यह मानने लगा हूँ कि योरप की अधिकांश जनता जी-जान से हमारे साथ है। रूस के पिट्रू राष्ट्रों की जनता भी यह जानने को इच्छुक है कि स्वतंत्र देशों में क्या हो रहा है।

प्रचार क्षेत्र में अमरीका को जिन भारी दायित्वों को पूरा करना है उसके लिए तीसरे कदम के रूप में हम को सरकार द्वारा संचालित जितनी भी सूचना संस्थाएँ हैं उन को उसी प्रकार निर्णयात्मक ढंग से एक सूत्र में आबद्ध कर देना चाहिए जिस प्रकार रक्षा सेना के विभिन्न भागों को किया गया है। हम को “विदेश सूचना कार्यालय” के नाम से एक स्वाधीन संस्था की स्थापना करनी चाहिए, और उसके अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से निर्धारित कर देना चाहिए। इस कार्यालय के अध्यक्ष का पद भी मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के समान ही होना चाहिए।

विश्व शान्ति के उपाय

यह कार्य ऐसा नहीं है जिसको ऐसे किसी माध्यम के सहारे छोड़ दिया जाय जिसको बहुत कुछ और या इसकी अपेक्षा कोई अधिक महत्वपूर्ण काम भी करना हो। न ही यह काम ऐसा है कि इसको किसी सहायक मंत्री के हवाले कर के संतोष कर लिया जाये।

यदि हम इस प्रकार की योजना को उसी दृष्टिकोण से देखें, जिस से मैं देखता हूँ; हमारे शत्रुओं ने इस को जो रूप दे दिया है उस को समझें, यानी इस को राष्ट्रीय नीति का एक प्रमुख अंग मानें तो इस को वही सम्मान और सहायता प्रदान की जानी चाहिए जिसका यह अधिकारी है। ऐसा करने से हम एक-एक काम को दो-दो बार करने से बच जायेंगे। उदाहरण के लिए इस समय मार्शल योजना की सूचना संस्थाओं और विदेश विभाग के अन्तर्गत काम करने वाली यू० एस० आई० एस० (U. S. I. S.) का कार्यक्षेत्र प्रायः एक-सा ही है।

हम को उन विघ्नों और बाधाओं को दूर करना होगा जिनके कारण हमारे सूचना विशेषज्ञ इसलिए काम नहीं कर पाते कि उनका नीति-निर्धारण में कोई हाथ नहीं है। इसी प्रकार की अन्य बाधाएँ भी उपस्थित हो जाती हैं, जैसे प्रचार कार्यक्रम पर अन्तिम निर्णय देने का काम ऐसे लोगों के हाथ में होता है जो या तो किसी दूसरे काम में व्यस्त रहते हैं या प्रचार कौशल अथवा उस की समयानुकूलता से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं।

शान्ति संघर्ष के नीति निर्धारण कार्य को उच्चतम स्तर पर पहुँचा देने से सब से बड़ा लाभ यह होगा कि हम को अपने कार्य को चलाने के लिए असाधारण योग्यता एवं प्रेरणा के व्यक्ति मिल सकेंगे। इस काम के लिए हम को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो प्रचार के

समस्त साधनों को कल्पना, साहस और चातुर्य के साथ प्रयोग में ला सकें। जिनको संसार की सांप्रतिक 'वर्ष-शक्तियों' के विषय में सूक्ष्म जानकारी नहीं है वे इस कार्य को चातुर्यपूर्ण ढंग से सम्पादित नहीं कर सकते।

हम इस काम के लिए किस प्रकार श्रेष्ठतम व्यक्तियों को पा सकें इस विषय में सफलता प्राप्त करने के लिए भी यह आवश्यक है कि हम प्रचार, समाचार-संकलन, ब्राडकास्टिंग, सूचना, प्रकाशन-कला, विज्ञापन-कला और विचार-प्रेषण-कला के अन्य साधनों के पारस्परिक अंतर को समझें।

जन्म ही से जो प्रचार-कला में दक्ष हो ऐसे व्यक्ति को किसी बाहरी चिह्न से नहीं पहिचाना जा सकता। उदाहरण के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी समाचार पत्र के कार्यालय में जिस को शिक्षा-दीक्षा मिली हो वही प्रचार-कार्य में सफल हो सकता है, यद्यपि यह भी सम्भव है कि उसने किसी समाचार-पत्र कार्यालय में ही इस कला को सीखा हो। उदाहरण के लिए स्वर्गीय श्री चार्ल्स मिचल्सन को ले लीजिए।

ऐसा प्रचारक सम्भवतः ऐसा व्यक्ति ही हो सकता है जो जनता तक अपनी बात पहुँचाने के सभी साधनों और माध्यमों से परिचित हो और यह जानता हो कि इन सब को मिला कर किस प्रकार संगीतमय ध्वनि पैदा की जा सकती है। उस में इस के साथ-साथ ऐसे कार्यों को सोचने की भी क्षमता होनी चाहिये जो अपना प्रचार स्वयं कर सकें। उस को यह भी मालूम होना चाहिये कि मौखिक प्रचार द्वारा प्रचार के स्पष्ट और नियमित साधनों को किस प्रकार सहायता पहुँचायी जा सकती है। प्रचारक सूचना देने भर से ही संतुष्ट नहीं हो सकता—उस को विश्वास भी पैदा करना होता है। प्रचारक की तुलना उस वकील से की

विश्व शान्ति के उपाय

जा सकती है जो एक मुकदमे में पैरबी कर के जनता का फैसला अपने पक्ष में कराने के लिए प्रयत्नशील होता है। यदि उस के कार्य के महत्व को समझ लिया जाय तो वह स्वयं ही ऐसी योजना तैयार कर सकता है जिस से विदेश नीति और उस के सम्बन्ध में किये जाने वाले कार्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ें त्यों-त्यों उन से अधिकतम मनोवैज्ञानिक लाभ उठाता रह सके।

कभी-कभी यह सुना जाता है कि हमारी जैसी राजनीतिक व्यवस्था है उस में कोई भी सरकारी संस्था पूरी तरह से कम्युनिस्टों के प्रचार-जाल का निराकरण नहीं कर सकती। यह सच है कि भाषण स्वाधीनता के लिए हम जिस प्रकार उत्सुक रहते हैं, उस से सरकारी संस्थाओं को ऐसी बाधाओं का सामना करना पड़ेगा जो किसी गैर सरकारी या तानाशाहों द्वारा स्थापित संस्थाओं के सामने नहीं आतीं।

किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार के कार्य के लिए रुपया कांग्रेस की स्वीकृति से ही मिलना चाहिये और जो भी संस्था बने उस को अन्त में कांग्रेस ही को अपनी गतिविधि का व्योरा देना चाहिये और उसी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था में मुझ को जो अनुभव हुआ है उस से मुझ को यह विश्वास हो गया है कि प्रभावपूर्ण ढंग से काम करने में एक सरकारी संस्था भी उतनी ही सफल हो सकती है जितनी कोई अन्य संस्था।

चौथी बात यह है कि अपने प्रचार कार्य की ओर हम जो कदम उठाये वह रचनात्मक होना चाहिए। हम को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि हम को “विचार प्रेषण कला” के विषय में बहुत कम जानकारी है, विशेषतः ऐसे विषयों में जिन का सम्बन्ध हमारे अपने देश

और उन अन्य देशों से है जिन की परम्पराएँ भिन्न हैं, और जहाँ पारस्परिक जानकारी का आदानप्रदान कठिन है ।

इसलिए हमारे प्रचार-कार्य में निरंतर वैसे ही अनुसंधान और परीक्षण होता रहना चाहिए जैसे सेना के विभिन्न भागों में होता है । हमारे पास जो साधन हैं उन्हीं का हम को अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए—इस समय हम ऐसा नहीं कर पा रहे हैं—और इन साधनों को सुधारना चाहिए तथा नये और श्रेष्ठतर साधनों का आविष्कार करना चाहिए ।

पाँचवीं बात जो हमको अपने दायित्व को अधिक स्पष्ट रूप से निर्धारित करने के बाद करनी चाहिए, वह यह है कि हमको अपने प्रचार की मात्रा और क्षेत्र को बढ़ाना चाहिए; जिसका मतलब यह है कि इस विषय में इस समय जो खर्च हो रहा है उस से कहीं अधिक खर्च किया जाना चाहिए ।

इस समय विदेश विभाग के तत्वावधान में इस विषय में १२०, ०००, ००० डालर खर्च किया जाता है । इस रकम को पास कराने के लिए सेनेटर विलियम वैनटन (डेमोक्रेट, कॉनेक्टिकट) जैसे लोगों को अथक प्रयत्न करना पड़ा था, क्योंकि पहली रकमों की अपेक्षा यह कहीं अधिक थी । किन्तु रूस के शासकों के इशारों पर काम करने वाली कम्युनिस्ट पार्टियाँ संसार में प्रचार के लिए जितना रुपया खर्च करती हैं उस का तो यह एक अंश मात्र ही है ।

प्रचार कार्य के लिए निश्चित की गयी रकमों का जो कल्याणकारी प्रभाव हो सकता है उसका मैं मार्शल योजना के सिलसिले में पश्चिमी योरप में अनुभव कर चुका हूँ और उसको दृष्टि में रखते हुए ही कहता हूँ कि यह रकम हमारी विश्वव्यापी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं

विश्व शान्ति के उपाय

है। हमको इस रकम को बढ़ा कर ३००, ०००, ००० डालर कर देना चाहिए और जैसे-जैसे प्रचार कार्य से लाभ होता नज़र आये, इस रकम में और भी वृद्धि करते रहना चाहिए। किसी देश की जनता के मस्तिष्क, हृदय और विश्वास को अपनी ओर कर लेने की लड़ाई सेनाओं द्वारा लड़ी जाने वाली लड़ाई से हर हालत में कर्म खर्च ही रहेगी। रूस के शासकों का चकाचौंध कर देनेवाला उदाहरण हमारे समक्ष है।

इस रकम का कम से कम १५ प्रतिशत तो गुप्त मर्दों के लिए निश्चित होना चाहिए। प्रचार विभाग का अध्यक्ष जिस प्रकार उचित समझे इस रकम को खर्च कर सके। यह आवश्यक नहीं है कि परम्परागत या ऐसे साधन जिनके आकार-प्रकार के विषय में लोगों को पहले ही से जानकारी हो, कामयाब होते रहें; तेली के बैल की तरह चलाया जाने वाला प्रचार-कार्य व्यर्थ भी सिद्ध हो सकता है। जब तक हम अपने प्रचार-कार्य निर्देशकों को असर्वजनिक साधनों का प्रयोग करने के लिए रुपये-पैसे की सहायता नहीं देंगे उनका मार्ग कण्टकाकोण ही रहेगा। हमको उनको पूर्णतः स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए—हाँ, आश्वासन के लिए और यह देखने के लिए कि कहीं अप्रसन्न तो नहीं हो रहा है जनरल अकाउंटिंग आफिस (अमरीका का सर्वोच्च आर्थिक जांच विभाग) उनके हिसाब का निरीक्षण करता रहे। कांग्रेस की सम्बन्धित समितियों को भी इसका विवरण दिया जा सकता है।

छठी बात यह है कि सरकारी प्रचार संस्था के काम को आगे बढ़ाने के लिए हमको धर्मयुद्ध की भावना से ओतप्रोत एक गैरसरकारी प्रचार संस्था की भी स्थापना करनी चाहिए। यह सरकारी संस्था का साथ देने के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी काम कर सकेगी जिनको साधारणतः सरकारी कार्य क्षेत्र के बाहर समझा जाता है।

यह संस्था विश्वव्यापी होनी चाहिए, इसकी शाखाएँ, उपशाखाएँ जितने भी देशों में संभव हों स्थापित की जायँ। स्वाधीनता सिद्धांत की स्थापना के लिए किये जानेवाले इस धर्म युद्ध की आर्थिक सहायता के लिए करोड़ों साधारण स्त्री-पुरुषों का सहयोग प्राप्त होना चाहिए। करोड़ों नर-नारी अपने आप से व्यक्तिगत प्रश्न करते रहते हैं “मैं क्या कर सकता हूँ ?” अथवा “मैं क्या कर सकती हूँ ?” इस योजना से उनको अपने प्रश्नों का उत्तर भी मिल सकता है।

इस ग़ैर सरकारी संस्था को दो मुख्य काम करने चाहिए। पहला यह कि स्वाधीनता सिद्धांत को प्रत्येक गाँव, मुहल्ले, दुकान, खेत, यूनियन हाल, तथा प्रत्येक समुदाय में पहुँचाने के लिए योग्य मौखिक-प्रचारकों को भरती करे, फिर इन प्रचारकों को संगठित करे, और दीक्षा दे।

यह भारी कठिन और भयानक काम है, अतः इसका अधिकांश भाग ऐसे स्वयंसेवकों द्वारा ही किया जाना चाहिए जिनको सच्ची लगन हो। जो इस क्षेत्र में रूसी रण-नीति का अध्ययन कर चुके हैं और अपनी आँखों से उसकी सफलता को देख चुके हैं वे आसानी से समझ सकते हैं कि इसके प्रति उपेक्षा की भावना रखना हमारे लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। ऐसी स्वतंत्र विश्व-शक्ति के बिना—जो हमारे साथ मित्र का काम करे—कुछ करने का यत्न करना ऐसा ही है जैसा कि किसी वस्तु की बिक्री के लिए ऐसे समय में डोंड़ी पीटना जब कि उसको बेचने वाला कोई भी न हो; या जैसा कि किसी राजनीतिक आंदोलन का सूत्रपात करना जब कि आप के पास कोई संदेशवाहक तक भी न हो।

इस संस्था का दूसरा प्रमुख काम यह होना चाहिए कि यह अन-

विषय शान्ति के उपाय

वरत प्रचार द्वारा जनता में सिद्ध कर दे कि कम्युनिज्म के वायदे झूठे हैं।

रूस के शासकों ने झूठ का जो आश्रय लिया है उसमें प्राप्त होने वाली सम्भावनाओं को अभी हमने छुआ भी नहीं है। रूस के शासकों का झूठा प्रचार ही उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता है। उनका सिद्धान्त इतिहास के प्रति विकारात्मक दृष्टिकोण फैलाने पर आश्रित है। उनके झंडे पर किसान और मज़दूर के राज्य का जो चिह्न है वह स्वयं ही एक बड़ा झूठ है। जिसको आज वह वर्गहीन समाज कहता है उसमें अनेकों वर्ग अस्तित्व में आ चुके हैं। राजनीतिक क्षेत्र में जिस प्रकार कम्युनिज्म तोड़-फोड़ की नीति अख्तियार करता है उससे वे सब परस्पर विरोधी बातें पैदा हो गयी हैं जो किसी भी ऐसे दृष्टिकोण से होती हैं जो 'पवित्र' उद्देश्य के लिए 'अपवित्र' साधनों का उपयोग करने में नहीं चूकता। इसकी स्वाधीनता का अर्थ है स्वाधीनता का अपहरण; इसकी शान्ति का अर्थ है युद्ध।

रूस के शासकों ने जो कुछ कहा और किया है उसी में से हमको ऐसी अपरमित सामग्री प्राप्त हो सकती है जिसके आधार पर उनको बृहदाकार झूठ बोलने का अपराधी ठहराया जा सकता है।

इसकी पुनरावृत्ति करते रह कर हम रूस के शासकों की बगुला भक्ति का बुद्धिजीवी से किसान तक सभी वर्गों के लोगों को यकीन करा सकते हैं। इसके साथ यदि व्यंग का भी सहारा लिया जाय तो हमारी प्रचार की शक्ति और भी बढ़ सकती है। चचा स्टालिन तथा उनके साथियों को वागपटुता का और व्यंग का मज़ा चखाना चाहिए; विभिन्न भाषाओं में ऐसे लोगों के व्यंगात्मक रेखाचित्र तैयार करने चाहिए जो अपने भोलेपन में इनकी बातों पर विश्वास कर लिया करते हैं। मुझको इस में तनिक भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार रूस के कम्युनिस्टों

को आत्मबचाव की बात करने के लिए मजबूर किया जा सकता है और अपने ही देश में इस सत्य का उत्तर देने या दमन करने में इतना व्यस्त रखा जा सकता है कि बाहर के देशों में उत्पात करने के लिए उनको अवकाश ही न मिल सके ।

पूर्वी योरप के लोग यह जानने लगे हैं कि पश्चिमी योरप की बगिया कितनी हरी-भरी है—और उसी मार्शल योजना के कारण जिसमें उनको भाग लेने से रूसियों ने रोक दिया था । वे यह भी जानते हैं कि उनके इस ओर के पड़ोसी उनकी अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध एवं स्वाधीनतापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं । उन्होंने यह भी सुन लिया होगा कि मार्शल योजना पर कार्य प्रारंभ होने के पश्चात् पश्चिमी योरप में जितने भी निर्वाचन हुए हैं प्रायः उन सभी में कम्युनिस्टों की हार हुई है ।

एशिया के लोग—विशेषतः वे जो स्वाधीन हैं—यह समझने लगे हैं कि रूस के शासक उनकी सहायता करने की अपेक्षा उनको दासता में जकड़ने को इच्छुक हैं । मास्को का आदेश पा कर उत्तरी कोरिया और चीनी कम्युनिस्टों ने जिस नग्न अतिक्रमण का सूत्रपात किया है उससे रूस के असल उद्देश्यों के विषय में किसी को भ्रम नहीं रह गया है ।

संसार की स्वतंत्र जातियों को योरप में रूस और एशिया में चीन द्वारा खड़ी की गयी सत्य-विरोधी दीवारों को तोड़ कर अपने स्वाधीनता और आशा के सन्देश को उनकी जनता तक पहुँचाना चाहिए ।

हम में से जो लोग मार्शल योजना के लिए काम कर चुके हैं, देख चुके हैं कि हमारे सूचना-सम्बन्धी प्रयत्नों का कितना अच्छा प्रभाव होता है । हम अनुमान भी नहीं लगा सकते कि स्वतंत्रता सिद्धान्त के अनवरत एवं व्यापक प्रचार से क्या कुछ किया जा सकता है । हमारे

विश्व शान्ति के उपाय

पास इस बात का प्रमाण है कि इस प्रचार से स्वाधीनता प्रेमियों को आशा दँधेगी और शत्रुओं को नित नयी विफलताओं का मुँह देखना पड़ेगा । यदि स्वाधीन संसार को अपनी धार्मिक प्रेरणा में भी उतना ही अजेय होना है जितना कि वह अपने पक्ष समर्थन में है तो स्वतंत्र संसार के इस प्रचार कार्य के प्रारंभ करने और बढ़ाने में तनिक सा भी विलम्ब नहीं होना चाहिए ।

नवाँ परिच्छेद

आर्थिक दंड

आठ मई सन् १९५० ई० को मैं फ्लोरिडा राज्य के मयामी नामक स्थान में किवानी इन्टरनैशनल नामक संस्था के अधिवेशन में भाषण देने वाला था। मुझे को न केवल यही उत्कंठा थी कि मैं किवानियों की इस संस्था में आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के विषय में कुछ कहूँगा बल्कि मेरे हृदय में यह भी अभिलाषा थी कि मैं अपने परम मित्र कप्तान एडीरिकेन बैकर से भी मिल सकूँगा। वह भी उस अवसर पर भाषण देने वाले थे और मैं उन को बहुत दिनों से जानता था। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले जिस समय मैं लासएंजिलीस नगर में स्टुडीवेकर नामक कार बेचा करता था यह सुनहरे बालों वाला युवक मरसर एजेंसी का प्रतिनिधि था और “मरसा स्पोर्ट रोडस्टर” नामक कार को जो अपने समय की प्रसिद्ध गाड़ी थी प्रदर्शन के लिए इधर-उधर लिए दौड़ा फिरा करता था। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि हम सभी को उस से ईर्ष्या सी हुआ करती थी।

सेनेट की वित्त-विधात्री समिति ने निर्णय किया कि वह आर्थिक सहयोग संचालन संस्था के विषय में मई मास में सुनवाई प्रारंभ करेगी। इसलिए मुझे को वाशिंगटन में ही रहना पड़ा। पर जब ९ मई को प्रातःकाल मैंने समाचार पत्रों में रिक्केनवैकर के भाषण का विवरण पढ़ा और देखा कि उन्होंने कहा था कि यदि समस्त संसार के लिए मार्शल योजना का आयोजन किया जाय तो उस में २००,०००,०००,००० डालर खर्च होगा तो मैं चौंक सा गया। वास्तव में उन्होंने अपने

विश्व शान्ति के उपाय

आँकड़े इस प्रकार नहीं दिये थे; उन्होंने जो संख्या दी थी उस में अमरीका के पुनःशस्त्रीकरण का व्यय भी शामिल था। उन्होंने यह भी कहा था कि यदि हम २००,०००,०००,००० डालर खर्च कर के विश्व शांति की स्थापना कर सकें तो समक्षिण बहुत ही लाभप्रद सौदा कर लिया। उन के वक्तव्य के परिणाम-स्वरूप अमरीका में विदेशों की सहायता-योजना के विषय में और भी भ्रम फैल गया।

विश्व शांति के लिए किये जाने वाले संघर्ष में वास्तव में क्या खर्च आयेगा यह कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता सकता। किन्तु मैं कुछ अनुमान लगाना चाहता हूँ और उस को आवश्यकता पड़ने पर काम आने के लिए लिख छोड़ना चाहता हूँ। इस से पहले कि मैं ऐसा करूँ मैं फिर दोहरा देना चाहता हूँ कि कोई भी ऐसा व्यक्ति जिस की बुद्धि खराब नहीं हुई विश्व भर के लिए कोई व्यापक मार्शल योजना की कल्पना नहीं कर सकता। किन्तु कई देशों के कई बुद्धिमान् व्यक्ति यह सोचने लगे हैं कि किन-किन क्षेत्रों की रक्षा करना संसार के स्वतंत्र देशों के हितों की दृष्टि से आवश्यक है? मैंने इस विषय में खर्च का जो वार्षिक व्योरा तैयार किया है वह इस प्रकार है:—

अमरीका और संसार के अन्य स्वतंत्र देशों की रक्षा के लिए जो देश महत्व रखते हैं, उन की आर्थिक सहायता के लिए

राजनीतिक गतिविधि

सूचना एवं प्रचार विभाग

भनायास ही आवश्यक हो जाने वाली

आर्थिक गति विधि के लिए

जोड़

डालर २,०००,०००,०००

,, ३५०,०००,०००

,, ३००,०००,०००

,, ३००,०००,०००

,, २,६५०,०००,०००

इस रकम में मैंने ३००,०००,००० डालर की यह गुंजाइश रखी है कि यदि आवश्यकता पड़े तो रुपये के अभाव से कोई काम रुक न सके। इस समय हमारे दूतावासों और राजनीतिक मदों पर प्रति वर्ष १५०,०००,००० डालर खर्च होता है। हमारी सूचना सम्बन्धी संस्थाओं का वार्षिक व्यय २००,०००,००० डालर से कुछ कम है। मैं इन दोनों मोर्चों पर ३००,०००,००० और डालर खर्च करने का प्रस्ताव करता हूँ। शेष ३००,०००,००० डालर इसलिए रख छोड़े गये हैं कि सम्भवतः ऐसी आर्थिक कार्यवाही भी करनी पड़े जिसकी अभी से कोई कल्पना नहीं की जा सकती।

अकेली मार्शल योजना पर ही अब तक जो कुछ खर्च किया जा चुका है उसको दृष्टि में रखें तो हो सकता है आर्थिक गतिविधि संबंधी खर्च के लिए मैंने जो संख्या दी है वह कम दिखायी दे। मार्शल योजना पर पहले १५ मास में ६,१००,०००,००० डालर खर्च हुए, दूसरे वर्ष ३,८००,०००,००० डालर और तीसरे वर्ष अर्थात् सन् १९५१ ई० के लिए २,२५०,०००,००० डालर निर्धारित किये गये हैं। इसको समझना आसान है। मार्शल योजना के अन्तर्गत चार वर्ष में पश्चिमी योरप के लिए जिस १३ अरब डालर का प्रबन्ध किया गया है उसमें से लगभग ६ अरब डालर तो सहायता और पुनर्वास के ऐसे विषयों पर ही खर्च हो जायेंगे जिनका गत महायुद्ध से सीधा सम्बन्ध है। यह रकम खाने और दवाइयों पर तथा उन सड़कों, बन्दरगाहों और कारखानों की मरम्मत पर खर्च हो जायगी जो लड़ाई के दिनों में बमों आदि से ध्वस्त हो गये थे। फिर से ९ अरब डालर खर्च करने की आवश्यकता नहीं हाँगी। मार्शल योजना से लाभ उठाने वाले देशों के आर्थिक जीवन को शक्ति प्रदान करने के लिए तो केवल ४ अरब डालर

विश्व शान्ति के उपाय

ही खर्च किये जायँगे। दूसरे शब्दों में यह समझिए कि साधारण युद्धोत्तर आर्थिक विकास के लिए मार्शल योजना का केवल एक तिहाई भाग ही खर्च किया जायगा।

आर्थिक सहायता को उन्हीं आँकड़ों तक जिनका मैंने उल्लेख किया है सीमित रक्का जा सकता है। इसका एक कारण और भी है। आर्थिक सहयोग संचालन संस्था का काम अब केवल दक्षिण-पूर्वी एशिया में ही बढ़ रहा है। जब इन्डोनेशिया, इन्डोचाइना, बर्मा और श्याम के लिए आर्थिक सहायता-कार्यक्रम की घोषणा की गयी तो हमारे एकान्तवादी मित्रों ने पुनः अपनी स्वाभाविक टर्-टर् शुरू कर दी। उन्होंने चिल्लाना शुरू किया कि अब हम अरबों डालर और धूल में मिलाने जा रहे हैं। वास्तव में इन सब देशों के लिए जो योजनाएँ बनायी गयी हैं उन पर ८४,०००,००० डालर से अधिक खर्च नहीं होने वाला है। और इसमें से भी एक बड़ा हिस्सा २०५,०००,००० डालर की उस रकम से मिलेगा जो कभी चीन के लिए स्वीकृत की जा चुकी थी, परन्तु खर्च नहीं की जा सकी थी। हाँ फिलिपाइन के लिए जो रकम स्वीकार की जाने वाली है, उसको इस ८४,०००,००० डालर की रकम में और जोड़ा जाना चाहिए।

रबड़ और टीन के निर्यात से जो आमदनी हो रही है, इसके अतिरिक्त भी और कारण हैं जिनसे यह आशा की जाती है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रथम वर्ष के कार्यक्रम के लिए अपेक्षित रुपये की कम आवश्यकता होगी। दक्षिणी-पूर्वी एशिया कृषि प्रधान क्षेत्र है और अभी वर्षों तक ऐसा ही रहेगा। इसलिए वहाँ कृषि-सुधार सम्बन्धी योजनाओं पर अधिक जोर दिया जाना है; वहाँ आवश्यकता इस बात की है कि लकड़ी के हल के स्थान में लोहे के हल कैसे प्रयोग में लाये जाय; अच्छे

बीज और ज्यादा अच्छी सिंचाई और भूमि की देख-भाल का प्रबंध कैसे किया जाय। कुछ क्षेत्रों में हमको उन्हीं तरीकों का प्रयोग करना है जिनसे चीन के देहात पुनर्वास कार्य में बड़ी सफलता मिली थी। किन्तु कुछ क्षेत्रों में इस कृषि-सुधार की बात तक भी उस समय तक नहीं की जा सकती जब तक कि वहाँ की जनता को उन रोगों से मुक्ति न दिला दें जो उसको अपंग बनाये जा रहे हैं। उदाहरण के लिए वियट नाम में (जो इन्डोचीन के तीन सहयोगी देशों में से एक है) बड़ी समस्या मलेरिया की है। इसका अन्त होना ही चाहिए। विना स्वस्थ कार्यकर्ताओं के खेती की उपज नहीं बढ़ायी जा सकती। इसलिए वहाँ हमारा ध्यान प्रधानतः स्वास्थ्य और स्वच्छता पर ही लगा हुआ है। ज़रा आगे दृष्टि डालें तो एशिया में आगे चल कर हमको भविष्य में भारत ही को नहीं वरन् भावी गैर-कम्युनिस्ट चीन को भी सहायता देने की बात सोचनी पड़ेगी।

शान्ति के लिए संवर्ष करना और उसमें विजय प्राप्त करना ऐसा ध्येय है जिसको दृष्टि में रखने पर दूसरे देशों का आर्थिक पुनरुत्थान करने के कार्य में पूँजी लगाने के अन्य सभी कारण गौण दिखाई देने लगते हैं; मुझको तो यह कहते हुए बहुत ही कम शिक्षक होती है कि व्यापारिक और राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से संसार के स्वतंत्र देशों को सुदृढ़ करना हमारे लिए श्रेयस्कर है।

प्रत्येक व्यापारी यह जानता है कि निर्धन लोगों के साथ व्यापार कर के लाभ उठाना कितना कठिन है। स्पष्ट ही है कि यदि स्वतंत्र संसार की समृद्धि बढ़ी तो वह आज की अपेक्षा व्यापार के लिए कहीं अधिक आकर्षक स्थान बन जायगा। प्रत्येक सफल व्यापारी यह जानता है कि अपनी फ़र्म के वार्षिक लाभ का कोई-न-कोई भाग मंडी के विकास के

विश्व शांति के उपाय

लिए खर्च करना आवश्यक होता है। साधारणतः उसे पाँच प्रतिशत रकम इसमें खर्च करनी होती है। इस मद पर ठीक-ठीक कितना खर्च किया जाय यह इस बात पर अवलम्बित है कि किसी फ़र्म विशेष ने साम्प्रतिक बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापन पर कितना खर्च किया है, और भविष्य की बिक्री बढ़ाने के लिए कितना। आर्थिक, राजनीतिक और सूचना सम्बन्धी मोरचों पर मैंने २, ६५०, ०००, ००० डालर की जिस रकम के खर्च करने का प्रस्ताव किया है, वह हमारे कुल राष्ट्रीय उत्पादन का एक प्रतिशत ही है। सम्भवतः व्यापारिक दृष्टि से भी विश्व की समृद्धि के बढ़ाने के लिए इतनी रकम का समृद्धिशाली अमरीका द्वारा खर्च किया जाना अनुचित नहीं है। पर इस खर्च से रूस के शासकों द्वारा संगठित किए जाने वाले आतंरिक अतिक्रमण को रोका जा सके तो यह समझा जायगा कि इससे पहले कभी किसी देश ने किसी भी जगह ऐसा लाभप्रद सौदा नहीं किया था।

तीनों असैनिक मोरचों पर शान्ति संघर्ष के प्रस्तावित खर्च को जब इसी उद्देश्य से खर्च की जाने वाली सैनिक मोरचे की रकम से तुलना की जाती है तो सैनिक खर्च बहुत अधिक दिखायी देने लगता है। पहली मद का खर्च २, ६५०, ०००, ००० डालर है तो दूसरी का ५०, ०००, ०००, ००० डालर। यदि हर साल ही इतनी लम्बी चौड़ी रकम खर्च करनी पड़ी तो हमारे आर्थिक जीवन पर ऐसा भारी दबाव महसूस होने लगेगा जिसको जनता देर तक वहन न कर सकेगी। तिस पर भी यदि इस खर्च से रूस के शासकों को अतिक्रमण से रोका जा सके और इस प्रकार युद्ध का निवारण किया जा सके तो निश्चय ही हमारा इतना बड़ा भार वहन करते और उसके कारण होने वाली असुविधाओं का सहन करना न्यायोचित ही होगा।

तीसरे विश्वयुद्ध में न केवल वास्तविक बलिदान ही अनिवार्य हो जायगा वरन् व्यक्तिगत रूप से अनेक प्राणियों का भी दुखपूर्ण अन्त हो सकता है, और सम्भवतः राष्ट्र को भी बुरा दिन देखना पड़ सकता है। तृतीय विश्वयुद्ध कितना भयानक हो सकता है, इसका अनुमान करने के लिए पीछे मुड़ कर हमको पहले और दूसरे विश्वयुद्धों पर दृष्टिपात करना चाहिए। पहले विश्वयुद्ध में अमरीका के ११९००० आदमी मारे गये थे और १६४००० घायल हुए थे। उसके मुकाबले में दूसरे विश्वयुद्ध में अमरीका के ३०६००० आदमी मारे गये और ५७२००० घायल हुए। इन भावना शून्य आँकड़ों के पीछे कितनी वैयक्तिक दुःख गाथाएँ हैं, यह कहना सहज काम नहीं है। सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से युद्ध जीवन में जो अस्तव्यस्तता लाता है उसकी तो कभी रुपये-पैसे में कीमत लगायी ही नहीं जा सकती।

किन्तु युद्ध के खर्च का अनुमान रुपये पैसे को गिन कर किया जा सकता है। पहले विश्व युद्ध का प्रत्यक्ष रणक्षेत्र का खर्च लगभग २२, ०००,०००,००० डालर था; दूसरे का लगभग ३५,०००,०००,००० डालर। अन्त में कुल मिला कर पहले विश्व युद्ध की वजह से अमरीका को जो खर्च करना पड़ा था उस के आँकड़े मेरे पास नहीं हैं। किन्तु भूतपूर्व सैनिक सचिव श्री गार्डन ग्रे का अनुमान है कि द्वितीय विश्व युद्ध का खर्च, यदि अन्तिम व्यक्ति को मिलने वाली पेंशन से पहले ही की मदों का जोड़ बैठाया जाय, तो लगभग १,३००,०००,०००,००० डालर होगा। जब मैं इन आँकड़ों की ओर देखता हूँ; जब मैं प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के हताहतों की तुलना करता हूँ; जब मैं अणुबम, स्वतः चलने वाले गोलों और विषैले कृमियों तथा गैस द्वारा किये जाने वाले युद्ध की कल्पना करता हूँ, तो तृतीय विश्वयुद्ध का

भयंकर चित्र मेरे मस्तिष्क में घूमने लगता है और यह सोचने भर से ही कि उस का हमारे लिए या प्रत्येक मानव-प्राणी के लिए क्या परिणाम होगा मैं सहम जाता हूँ। यदि और किसी कारण से न सही तो प्रलय की आशंका से ही हम को शान्ति संघर्ष को उस समय तक जारी रखने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए जब तक कि हम इस में पूर्णतः सफल न हो जायँ।

रूस के शासकों से जो संघर्ष छिड़ गया है वह लम्बा और विलम्बात्मक हो सकता है। इसी आशंका से मैं चिन्तित हो जाया करता हूँ। हम स्वभावतः शीघ्र धैर्य खो बैठने वाले प्राणी हैं; कई बार जब हम को देर तक सतत प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता होती है, तो हम तुरंत कुआँ खोद कर पानी पीने के स्वप्न देखने लगा करते हैं। यह मनोवृत्ति भयानक है। इस के परिणामस्वरूप ऐसी भयंकर क्षति हो सकती है जिस का अनुमान रुपये पैसे से नहीं हो सकता—यदि हम हौसला खो बैठे, या अपने जीवन के नैतिक स्रोत ही को सुखा बैठे तो कौन लगा सकेगा हमारी क्षति का अनुमान ?

कुछ अर्थों में किसी देश की शक्ति उस के व्यक्तियों की शक्ति का जोड़ ही हुआ करती है। यदि हम आज सबल हैं तो उस का कारण यह है कि हमारी राजनीतिक संस्थाओं और आर्थिक व्यवस्था ने हम को व्यक्तिगत रूप से नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति और विकास करते रहने का अवसर प्रदान किया है।

उन्नति के इस अवसर के कारण ही अमरीका की स्वाधीनता धारणा ने एक अद्वितीय एवं विशिष्ट गुण प्राप्त कर लिया है। सामूहिक रूप से हम ऊँचे पैमाने की भाषण स्वाधीनता, पूजा स्वाधीनता और अभाव तथा भय से मुक्ति रूपी स्वाधीनता का उपयोग करते रहे हैं। किन्तु इनके

अतिरिक्त हमारी स्वाधीनता एक और दिशा में भी अद्वितीय थी और अद्वितीय है। हम को ऐसा वातावरण प्राप्त है जो व्यक्तिगत क्षमता, सूक्ष्म, और विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चयन करने तथा अपनी-अपनी प्रतिभा को उपयुक्त दिशाओं में विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। यही हमारी शक्ति का गहरा स्रोत रहा है।

इन अर्थों में स्वाधीनता प्राप्त करना आसान नहीं है। क्योंकि मनुष्य समाज में रहता है, देश में रहता है, संसार में रहता है; वह इन सब का परित्याग कर के स्वाधीनता को किसी निराकार ध्येय के रूप में प्राप्त करने का यत्न नहीं कर सकता। कोरे व्यक्तिवाद का जमाना चला गया; यह सहकारितात्मक व्यक्तिवाद का जमाना है। अमरीका के आदिम प्रस्थापक अपने-अपने घरों में स्वाधीन थे, अपना जीवन अपने ही बल पर चलाते रह सकते थे। उन के वंशज, चाहे खेत पर काम करते हों, कारखाने में, दफ्तर में, गाँव में या शहर में, उन को एक दूसरे पर आश्रित रहना पड़ता है। आदिम प्रस्थापक अपनी दुनिया अपने आय ही रच सकता था; उस के पौत्रों को औरों के साथ मिल कर ही स्वाधीन संसार की प्राप्ति करनी है।

सच्ची स्वाधीनता वह है कि जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ, और सब व्यक्ति समाज के साथ सुखद सम्बन्ध संतुलन स्थापित कर सकें। आज की दुनिया में हमको “सामूहिक सौदों” से उद्योग-धंधों के लिए रुपया उधार देने वाले बैंकों जैसी पेचीदा संस्थाओं का प्रबंध करना होता है ताकि ऐसी सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं को जन्म दिया जा सके जिनमें स्वाधीनता का पौधा पनप सके। आज की दुनिया में सरकार को भी विस्तृत और पेचीदा जिम्मेदारियों को पूरा करना पड़ता है। राष्ट्रीय मजूर-मालिक सम्बन्ध बोर्ड, सिल्योरिटी

विश्व शान्ति के उपाय

एण्ड एक्सचेंज कमीशन और हाल ही में बनाया गया इकानामिक स्टैबिलिज़ेशन बोर्ड इसके उदाहरण हैं। साधारण समय हो या सुरक्षा की तैयारी का असाधारण समय, सरकार का एक मात्र ध्येय ऐसी सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं को प्रोत्साहन देना होना चाहिए जिनसे स्वाधीनता की रक्षा हो; न कि ऐसा करने में ऐसे अधिकारों को हासिल कर लेना जिनसे व्यक्ति की गतिविधि, शक्ति, सूक्ष्म और विकल्प-चयन के अधिकार के सीमित होने का भय हो।

जिस दिन से तीर्थ-यात्रियों (Pilgrims) अर्थात् आधुनिक अमरीका के प्रवर्तकों ने “प्लाइमथ राक” पर कदम रखा था और करजन हेनरी हडसन ने इस नदी में जो उनके नाम से अब तक प्रख्यात है, अपनी नौका ला कर डाली थी, उसी दिन से व्यक्ति को प्राप्त होनेवाला अवसर अमरीका के सामूहिक जीवन की परिचाऊन शक्ति रहा है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनका कहना है कि इस शताब्दी का प्रारंभ होने से व्यक्ति के इस अधिकार पर प्रतिबंध लग गया है। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। मेरी राय में इस शताब्दी के पिछले ५० वर्षों की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा जा सकता है, यद्यपि हमारी जनतंत्रता के जीवन के इन वर्षों में “अवसर” शब्द के अर्थ में बहुत कुछ हेर-फेर हो गया है। अपने पितामह की अपेक्षा आज के अमरीकावासी ने जिस क्षेत्र में कहीं अधिक उन्नति की है, वह भौतिक क्षेत्र है; उसका आज का आर्थिक जीवन इसका स्पष्ट प्रमाण है। यदि आज जो डालर की कीमत है उससे नापा जाय तो सन् १९०० ई० में हमारे समस्त राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य ५०,०००,०००,००० डालर था। इस समय जब कि जनसंख्या में केवल शत-प्रतिशत ही वृद्धि हुई है, कुल राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य २७९,०००,०००,००० डालर है, अर्थात् १६०० ई० से पाँच गुणा अधिक; दूसरी बात जिसमें

आज का अमरीकावासी अपने पितामह से अधिक उन्नत दिखायी देता है, व्यापार और व्यवसाय में मिलने वाले अवसर हैं। सन् १९०० ई० में इस देश में १८००,००० ऐसे उद्योग-धंधे थे; इस समय उनकी संख्या ४०००,००० है; और तब भी इनका स्वामित्व व्यक्तिगत था और आज भी। सन् १९०० ई० में इस देश में ३०० ऐसे वैज्ञानिक अनुसंधानालय थे जिन में विभिन्न उद्योगों के लिए ९००० कार्य कर्ता अनुसंधान आदि करते रहते थे। सन् १९४० ई० में २२०० अनुसंधानालय थे, उनमें काम करने वालों की संख्या ७०,००० थी। जहाँ तक राष्ट्रीय आय का सम्बंध है, आँकड़े ये हैं—अमरीकावासियों द्वारा की गयी बचत १३६,०००,०००,००० डालर, बैंक डिपॉजिट ९७,१००,०००,००० डालर और जीवन बीमा ६०,०००,०००,००० डालर। शेष जीवन के विषय में मैं केवल अमरीकावासियों की कारों ही का जिक्र कर दूँ तो काफी होगा; उनके पास ४०,०००,००० कारें हैं; रेडियो सेटों की तादाद ८०,०००,००० है। पाठक स्वयं इससे अपना परिणाम निकाल सकते हैं।

यह नहीं समझना चाहिए कि राष्ट्रीय दृष्टि से हमारी सिद्धियाँ डालरों, काम में आनेवाली सामग्री, तथा अन्य उपलब्ध सेवाओं ही तक सीमित हैं। सन् १९५१ में प्रायः सभी कल कारखानों में किसी व्यक्ति को एक सप्ताह में ४० घंटे से अधिक काम नहीं करना पड़ता। यदि किसी कारीगर को काम करते समय कोई चोट लग जाय या अन्य कोई हानि हो जाय तो उसकी क्षतिपूर्ति के लिए उपयुक्त कानून है। वृद्धावस्था के लिए बीमे का प्रबंध है जिसका प्रीमियम केन्द्रीय सरकार देती है; इसी प्रकार का आयोजन आश्रितों के लिए भी है। केन्द्रीय सरकार की ओर से बेकारी के भत्ते, तथा बेकार व्यक्ति के बच्चों के लिए अलग भत्ते का प्रबंध है; जो लोग किसी वजह से काम करने के लायक

ही नहीं रहे, या ऐसे हैं जिनका कोई बीमा भी नहीं किया जा सका था, उनकी सुरक्षा का भी उपयुक्त प्रबंध है। कोई छोटे बच्चों से काम नहीं करा सकता। किसी मजदूर या दफ्तरी में काम करने वाले व्यक्ति को एक निश्चित रकम से कम वेतन किसी अवस्था में भी नहीं मिलता। सन् १९०० ई० में कोई यह जानता भी न था कि “सामूहिक सौदा” क्या होता है; सन् १९११ ई० में यह आये दिन की बात है।

जिस प्रकार भौतिक क्षेत्र में प्रगति हुई है, उसी प्रकार नागरिकों को मानसिक और सांस्कृतिक उन्नति करने के अवसरों में भी वृद्धि हुई है। हारवर्ड विश्वविद्यालय के डाक्टर समनर स्लिट्चर का मत है कि संसार भर के इतिहास में ऐसा दूसरा कोई उदाहरण नहीं मिलेगा जिसमें शिक्षा के मार्ग में आने वाली आर्थिक बाधाओं पर इतनी जल्दी काबू पा लिया गया हो जितनी जल्दी कि अमरीका में। सन् १८९० ई० में ऐसे १४ बच्चों में से जिनको आयु की दृष्टि से स्कूल में होना चाहिए था केवल एक बालक ही स्कूल में रह पाता था; सन् १९४५ ई० में प्रत्येक पाँच ऐसे बालकों में से केवल एक ही ऐसा था जो स्कूल में होना चाहिए था और वहाँ न रह सका। जनसंख्या जिस हिसाब से बढ़ रही है, उससे १३ गुनी रफ़्तार से स्कूल की पढ़ाई पूरी करनेवाले छात्रों की संख्या बढ़ रही है। कालिज की पूरी शिक्षा प्राप्त करनेवाले स्नातकों की संख्या की रफ़्तार जनसंख्या की वृद्धि की रफ़्तार से छः गुनी है। सन् १९०० ई० में अमरीका में ७,२७२ अध्यापक थे जो

*सामूहिक सौदे से अभिप्राय उन समझौतों से है जो वेतन आदि के लिये मजदूरों की ओर से उनकी यूनियनों और मालिकों के दरमियान किये जाते हैं।

कालिजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाते थे । इस समय उनकी संख्या ७५००७ है ।

मस्तिष्क के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है, और अमरीका ने जो रचनात्मक सिद्धियाँ की हैं, राजनीति में जेम्स मडिसन, मनोविज्ञान में विलियम जेम्स और दर्शन शास्त्र में जान डेवी इसके उदाहरण हैं । सांस्कृतिक क्षेत्र में अमरीका योरप की परम्पराओं को प्राप्त कर के ही संतुष्ट नहीं हो गया । लुइस गैल्लेटियर ने लिखा है कि “इंग्लैंड के सांस्कृतिक जिज्ञासु एक ओर जहाँ अमरीकी पांडित्य की श्लाघा करते नहीं थकते तो दूसरी ओर आये दिन अमरीकी वाक्य वहाँ की भाषा में अपना घर बनाते जा रहे हैं । जब ब्रिटेन के प्रांतीय पत्र किसी की संक्षिप्त जीवनी को ‘प्रोफाइल’ (Profile) कहते हैं, जब किसी मज़दूर मीटिंग में अमरीकी गीत गाये जाते हैं, जब “पंच” जैसे व्यंग्यात्मक पत्र में “न्यूयार्कर” पत्र से चित्रों के शीर्षक और मजाक उद्धृत किये जाते हैं, जब कि योरप का एक प्रमुख पंडित संसार का सर्वश्रेष्ठ कलात्मक पत्र क्लीवलैंड म्यूजियम आफ आर्ट द्वारा प्रकाशित किया जाता है तब निश्चय ही यह समझना चाहिए कि “चीविंगगम” या हालीवुड के व्यंग्य चित्र, या कोको कोला ही अमरीकी संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ नमूने नहीं हैं ।” और एक अमरीकन नागरिक होने की हैसियत से मुझ को इस बात पर गर्व करना चाहिए कि इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक विलियम फ़ाकनर को माना गया है । उन्हीं को ‘नोवल पुरस्कार’ भेंट किया गया है ।

आध्यात्मिक दृष्टि से हमने कितनी उन्नति या अवनति की यह बताना आसान नहीं । यह विषय ही ऐसा है जिस में कोई सही आँक नहीं हो सकती । किन्तु जब हम देखते हैं कि अब हम दूसरों के नाग-

विश्व शान्ति के उपाय

रिक अधिकारों के विषय में अब उपेक्षा नहीं रखते, वरन् उनके प्रति सजग रहते हैं, तो यह कहना ही चाहिए कि हमने अवश्य उन्नति की है। अमरीकन जनतंत्र की नींव रखने वालों का यह स्वप्न था कि इस देश में बसने वाले सभी लोगों को आत्मविकास का समान अवसर मिले; देर तक हम इस आदर्श के प्रति उदासीन रहे; किन्तु अब इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया है, और उस हद तक हम अपने पूर्वजों की आकांक्षा पूरी कर सके हैं। जिस समय मैं बच्चा था, इस बात को कहने के लिए मानते तो सब थे किन्तु कोई हृदय से स्वीकार नहीं करता था। मेरे पुत्रों और आज के अन्य युवकों के लिए नागरिक अधिकार प्रत्येक अमरीकावासी के जन्मसिद्ध अधिकार हैं। एक ही पीढ़ी में मानव-जाति के भ्रातृत्व को स्वीकार करने के कितने निकट आ पहुँचे हैं। अब हम दूसरों ही को उपदेश नहीं देते, अपने उपदेशों के अनुकूल ही अपना आचरण भी रखते हैं।

संक्षेप में अमरीका के पिछले वर्ष की भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रगति की यही कहानी है। हम ने अब तक जो कुछ किया है, उस पर हम को गर्व करने का अधिकार है; किन्तु उन्नति पथ को छोड़ने का नहीं। अमरीका की सब से अधिक रोमांचकारी विशिष्टता ही यह है कि यहाँ किसी काम का कभी अंत नहीं होता—यहाँ “अनंत व्यापार” चलता रहता है।

आने वाले दस वर्षों में हम को अपने “व्यापार” को अनन्त ही नहीं रखना, खींच-तान के इस युग-व्यक्ति में विकास के अवसरों को नित्यप्रति प्रसारित भी करते रहना है। यह सहज काम नहीं है, यह सच है। रूस के शासक ऐसी कार्यवाहियाँ करने पर तुले हैं, जिन से खिंचाव बढ़े, आशंका और भय फैले; यदि हम ने सावधानी न बरती

तो हम प्रत्युत्तर में ऐसी कोई कार्यवाही भी कर बैठ सकते हैं, जो विवेकशून्य और प्रलापपूर्ण हो, यदि ऐसा हुआ तो हमारी स्वाधीनता संकुचित हो जायगी, उत्तरोत्तर उन्नति करते रहने का द्वार बन्द हो जायगा। जब कभी नागरिक अधिकारों या व्यापार आदि की स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध लगाने की बात उठे तो हम को आलोचनात्मक ढंग से यही सोचना चाहिए कि इसका आगे चल कर क्या परिणाम होगा।

यह सभी स्वीकार करते हैं कि हमारा सुरक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम पीछे न पड़ जाय इसलिए कुछ न कुछ आर्थिक नियंत्रण स्वीकार करना ही होगा। किन्तु हम को कभी यह नहीं भूलना चाहिए कि एक कारखाने का व्यवस्थापक सब से उत्तम काम तभी कर के दिखा सकता है जब उस को अपनी योजनाएँ बनाने और कार्यान्वित करने की पूरी स्वाधीनता हो; और यह कि कारीगर सब से अच्छा काम तब करते हैं, जब काम उन के मन का हो। जब हम कोई प्रतिबन्ध लगाने की बात सोचें तो हम को उस से पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि क्या वास्तव में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि बिना इस के काम नहीं चल सकता। और दूसरी बात तब यह सोचनी चाहिए कि जैसे ही संकट काल समाप्त हो जायगा, यह प्रतिबंध भी जाता रहेगा।

अपने आर्थिक जीवन को अधिक से अधिक स्वाधीन रखने से भी अधिक महत्व की बात यह है कि किसी के व्यक्तिगत नागरिक अधिकारों पर आँच न आने पाये। स्वाधीनता का अपहरण एक भयंकर बात है। मैं आज भी पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन के नागरिकों के नित्य-प्रति के जीवन की विषमता को नहीं भूल सका हूँ। पश्चिमी बर्लिन में बावजूद कठिनाइयों के आप स्त्री-पुरुषों और बालकों के चेहरों पर आशा झलकती देखते हैं; वे ऊँचा मस्तक कर के खड़े होते हैं। पूर्वी बर्लिन में

विश्व शान्ति के उपाय

प्रत्येक नागरिक क्षमाप्रार्थी सा दिखायी देता है; जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की ओर देखता भी है तो उसकी दृष्टि ही से उस के सहमे हुए होने का प्रमाण मिलता है। हम अमरीकावासी खिंचाव और कष्ट के इन दस वर्षों को काट सकेंगे; और हम अपने लिए और संसार के लिए आत्मविकास के लिए उत्तरोत्तर अधिकाधिक अवसर प्रदान करते रहने में भी सफल हो सकते हैं; शर्त यह है कि हम अपनी अधिकार घोषणा (Bill of Rights) के प्रति सदा वफ़ादार रहें और उसकी ज्योति को कल भी उतनी ही उज्ज्वल बनाये रहें जितनी आज है, और किसी के पीछे “पापी पापी” कह कर दौड़ने की प्रवृत्ति को न बढ़ने दें।

स्वाधीनता को अपने देश में सजीव बनाये रख कर, अपने घर की दशा को संतोषजनक रख कर हम विश्व के नेतृत्व के लिए हो रहे वर्तमान संघर्ष के लिए एक भारी गढ़ तैयार कर सकेंगे। अमरीका ने अब तक अपनी शक्ति जितनी बढ़ाई है, उतना ही अब उस को ऊपर भी उठना चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अगले दस साल में हमारे लिए और समस्त मानव जाति के लिए जीवन-मरण के प्रश्न तय करने की घड़ियाँ आयेंगी। आने वाली शताब्दियों में मानव-जाति किस दशा में रहेगी, इसका दारोमदार उन निर्णयों पर है जो हम करेंगे और उन जोखिमों पर है जो हम उठा सकेंगे। किन्तु भविष्य के ऐसे चित्र से—जिसमें हम को इतनी समस्याएँ हल करनी हैं और इतना बोझ उठाना—हमको निरुत्साह नहीं होना चाहिए। हमारे राष्ट्र को पहले भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है; उन परीक्षाओं से हम सुदृढ़ ही बने हैं। मुझ को इस में तनिक भी सन्देह नहीं कि अपने दायित्वों को पूरा करने से हमारी शक्ति कम नहीं होगी—ऐसे काम जो शक्ति द्वारा सम्पादित किये जाते हैं, शक्ति कम नहीं करते, शक्ति को बढ़ाते ही हैं।

दसवाँ परिच्छेद

क्या हम विजयी होंगे ?

हम यह मान ही लेते हैं कि सभी मोरचों पर हम बल, कल्पना, और संलग्नता के साथ शांति संघर्ष चलाते रहेंगे, अपने आर्थिक जीवन को सबल बनाये रहेंगे, स्वतंत्र संसार का नेतृत्व करने का हमारा दायित्व है, यह हम स्वीकार करते हैं, और उस के लिए जो कुछ भी हमको करना है, उस की हम पुष्टि करते हैं। तब क्या क्या आशा ले कर हम यह सब कुछ करेंगे ? क्या हमारी सर्वश्रेष्ठ आशा यही है कि वर्तमान टंडी लड़ाई चलती रहेगी रूस के शासक समस्त स्वतंत्र संसार में अव्यवस्था और भ्राजकता फैलाते रहने के लिए यत्न करते रहेंगे, और पिट्यू राष्ट्रों को सैनिक कार्यवाहियाँ करने को उकसाते रहेंगे और अपनी लाल सेना को किसी भी समय प्रहार करने की स्थिति में बनाये रहेंगे ? या हम को यह आशा है कि एक बार जब हम शक्तिशाली हो चुकेंगे तो हम संसार में एक नया शक्ति-संतुलन स्थापित कर सकेंगे, और रूस के शासकों को दूसरे राष्ट्रों के साथ शांतिपूर्ण ढंग से रहने के लिए विवश कर सकेंगे ? या कोई ऐसी भी संभावना है कि रूस में तानाशाही भंग हो सकेगी ?

ये कुछ प्रश्न हैं जिन पर मैं मनन करता रहा हूँ। ये ही सवाल हैं जिन के उत्तर ढूँढ़ने की चेष्टा में मैं अमरीका के और बाहर के राजनीतिज्ञों और अधिकारियों से परामर्श करता रहा हूँ। कितना अच्छा

विश्व शान्ति के उपाय

होता कि मैं इन प्रश्नों के एक से ही उत्तर पा सकता; किन्तु वास्तविकता यह नहीं है; इन प्रश्नों के उत्तर देने वालों में मतैक्य नहीं है, भारी मत-भेद है। किन्तु एक बात ऐसी है जिस पर प्रायः सभी व्यक्ति एकमत हैं और वह यह है कि जब हम इस योग्य हो जायेंगे कि शत्रु को यकीन हो जाय कि हम अपनी रक्षा कर सकते हैं तो हमारी स्थिति आज की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी हो जायगी। श्री विंस्टन चर्चिल का उदाहरण लीजिये। उनका मत है कि जब हम शक्ति प्राप्त कर लेंगे तो रूस के शासक समझौता करने को तैयार हो जायेंगे, और तब उन से जो भी समझौता होगा उस की शर्तों को उन से पूरा कराया जा सकेगा—किन्तु एक शर्त के साथ “इस अपनी शक्ति को बनाये रहे तो”। यह बात कहते समय श्री चर्चिल की भाव मुद्रा अति गंभीर हो गयी थी। श्री चर्चिल ने जो कुछ कहा उस से मैंने यह परिणाम निकाला कि अपने कूटनीति के मोरचे पर रूस के शासक सदा दोहरी चाल चलते रहते हैं। जब वे ऐसे राष्ट्रों के साथ संधि और समझौते करते हैं जिन के पास ऐसी शक्ति है जिस का उन को सम्मान करना पड़ता है तो उन संधियों और समझौतों को पूरा करते हैं—चाहे उन के मन में उस समय कितना ही द्वेष क्यों न भरा हो। किन्तु इस के प्रतिकूल जब वे ऐसे देशों से संधियाँ और समझौते करते हैं जो सैनिक दृष्टि से उन की अपेक्षा दुर्बल हैं तो वे संधि और समझौतों का महत्व रही कागज के टुकड़ों से अधिक नहीं लगाते।

श्री चर्चिल ने निश्चित रूप से यह नहीं बताया कि अंत में हम किस प्रकार का समझौता रूस के शासकों के साथ कर सकते हैं। संभवतः उन का विचार है कि यदि हम अपनी शक्ति को उपयुक्त मात्रा में

बढ़ा लें तो रूस के शासक संसार में यत्र-तत्र फैलाये कलह और मार-काट को गोक सके ।

जितने भी राजनीतिज्ञों से मैं मिला उन में से किसी ने भी यह नहीं कहा कि रूस के वर्तमान के शासकों से किसी सच्चे हृदय परिवर्तन की आशा करना उचित है । उन में से प्रत्येक का यही मत था कि रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ('पॉलिट ब्यूरो') विश्वविजय के स्वप्न देखते-देखते ऐसी जगह जा पहुँचे हैं जहाँ वे स्वयं शान्तिपूर्ण ढंग से रहने और दूसरों को शान्तिपूर्ण ढंग से रहने देने के लिए कोई विश्वासजनक कार्य नहीं कर सकते । वे जब कोई वायदा करेंगे तो केवल इसी दृष्टि से कि उस का कैसे तोड़ा जाय । किन्तु यदि वास्तव में यही सत्य है तो हम को गंभीरतापूर्वक यह विचार करना होगा कि रूस में राजबदल की क्या संभावना है ।

यह कोई भी नहीं मानता कि रूस की मौजूदा सरकार बिना किसी उथल-पुथल ही के अपने किसी प्रतिद्वन्द्वी का शासन की बागडोर सँभाल लेने देगी । तब क्या आज की स्थिति में ऐसी भी कोई संभावना है कि रूस की वर्तमान सरकार को धक्का दे कर बाहर निकाला जा सके ? इस प्रश्न से अधिक महत्वपूर्ण एवं विवादप्रस्त और कोई प्रश्न नहीं हो सकता । मेरे कई ऐसे मित्र और सहयोगी हैं जिनकी यह पक्की धारणा है कि रूस में ऊपर के लोगों ने इतना मजबूत पंजा जमा रखा है और यह कि आज के युग में रूस के शासकों का ही नहीं वरन् किसी भी तानाशाही को आंतरिक विप्लव द्वारा नहीं उलटा जा सकता; उनकी राय में उन के पतन का केवल एक ही मार्ग है और वह यह कि उन पर बाहर से आक्रमण कर के उन को कमजोर कर दिया जाय । वे हिटलर और मुसोलिनी का उदाहरण देते हैं और कहते हैं कि जिस

विश्व शान्ति के उपाय

समय तक उनकी सेनायें रणक्षेत्र में परास्त नहीं हुई थीं, उन्होंने अपने-अपने देश की जनता और साधनों पर ऐसा अधिकार जमाया हुआ था कि उन को आँच तक भी आने की आशंका न थी। उन की सेनाओं के परास्त होने और उन के अपने देशों पर आक्रमण होने के बाद ही पासा पलटा था। उन का यह भी मत है कि सोवियट साम्राज्य हिटलर और मुसोलिनी के साम्राज्यों से कहीं बड़ा और कहीं अधिक शक्तिशाली है; उस के पास इतनी विस्तृत भूमि है कि उस को खाने-पीने की तथा युद्ध सम्बन्धी सामग्री बाहर से मँगाने की आवश्यकता नहीं। साथ ही, कभी किसी दूसरे शासक वर्ग ने अपना आधिपत्य बनाये रहने के लिए ऐसे कौशलपूर्ण साधनों और आतंक का प्रयोग नहीं किया जैसा कि रूस का वर्तमान शासक मंडल करता है; रूस के शासक जनता पर आधिपत्य बनाये रहने के हथकंडों का प्रयोग अन्य किसी भी तानाशाही शासन की अपेक्षा अधिक देर से करते रहे हैं—यहाँ तक कि हिटलर और मुसोलिनी को भी उन के समान दक्षता प्राप्त नहीं थी। ऐसे सब मतों के बावजूद, मैं यह मानता हूँ कि रूस के वर्तमान शासन के पतन के बीज उसकी व्यवस्था ही में सन्निहित हैं। सूक्ष्मदर्शी पर्यवेक्षकों ने इस विषय में जो कुछ कहा है, उसको सुन कर मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है। इन विद्वानों के कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं।

जान फास्टर डलेस, जनरल डगलस मैकआर्थर और जार्ज केनन। इसी प्रकार का मत रखने वाले कुछ देशों के विदेश मंत्री भी हैं। मैं उनके नाम नहीं बता सकता।

अंत में किस प्रकार रूस में तानाशाही का अंत होगा, इसके विषय में केवल कल्पनायें ही की जा सकती हैं। और कब ऐसा हो सकेगा,

इस विषय में भी कल्पना के अतिरिक्त और किसी बात का सहारा नहीं लिया जा सकता। किन्तु जिस आंतरिक तनाव और दबाव के कारण कोई राज्य-व्यवस्था भंग हुआ करती है, उसके चिह्न ठोस होते हैं, और आसानी से पहचान लिये जा सकते हैं।

रूस में बहुत से मजदूर व्यग्र, क्रुद्ध और असंतुष्ट हैं। सोवियट सरकार ने वायदा किया था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने के पश्चात् रूस की जनता के जीवन मापदण्ड में सुधार होगा; यह प्रतिज्ञा अभी तक पूरी नहीं की जा सकी है। रूस के बृहत् पुनः शस्त्रीकरण कार्यक्रम पर जो भयंकर व्यय हो रहा है, उसको जनता की हालत सुधारने के काम में लगाया जा सकता था। जब कोई सरकार जनता की आधारभूत आवश्यकताओं के विषय में दिये गये वचन को पूरा नहीं कर पाती तो उसके इस विश्वासघात के भयंकर परिणाम हो जाया करते हैं। गत विश्वयुद्ध के सम्बन्ध में जिन रूसी सैनिकों को विदेश जाना पड़ा था, उनको याद है कि “लौहपट्ट” के पश्चिम में रहनेवाले योरपवासी उनकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा जीवन व्यतीत करते हैं।

रूस की जन संख्या का ८० प्रतिशत भाग खेती कर के ही जीवन यापन करता है। रूस के इन किसानों में से अधिकांश खेती के जबरदस्ती ‘समूहीकरण’ (Collectivization) के कष्ट को नहीं भूल पाये हैं। गत महायुद्ध की एक ऐसी कथा भी है जो अभी तक बहुत लोगों को मालूम नहीं हो सकी है किन्तु जिस की पुष्टि नाज़ी सरकार की स्त्री गयी फिल्मों से, जो हमारे पास है, हो चुकी है। जब नाज़ियों की सेना युक्रेन में (जिस को योरप में “रोटी की झोली” के नाम से पुकारा जाता है) पहुँची तो उन का जनता द्वारा हार्दिक स्वागत किया गया था। वास्तव में युक्रेन में जर्मन विजेताओं को जिस प्रकार का स्वागत

विश्व शान्ति के उपाय

मिला था, वैसा ही स्वागत उन को प्रायः सभी अधिकृत क्षेत्रों में प्राप्त हुआ था। यदि नाज़ी विजेता इस से लाभ उठाते तो उस का क्या परिणाम होता यह कहना कठिन है, किन्तु उन्होंने ने किसानों पर वैसे ही जुल्म ढाये जैसे कि रूस के शासक ढाते आये थे, जिस के फलस्वरूप उन के संभाव्य मित्र उन के शत्रु बन गये।

इस के अतिरिक्त ऐसे भी असंख्य रूसी हैं जो व्यक्तिगत कारणों से वर्तमान शासन के शत्रु हैं। लगभग डेढ़ करोड़ की पुरुष ऐसे “कैम्पो” में जकड़े हुए हैं जहाँ उन से गुलामों की तरह काम लिया जाता है। जब किसी देश की पाँच प्रतिशत जनता काँटोंदार तारों के पीछे पड़ी सदृती हो तो समझ लीजिए उस देश की स्थिति अच्छी नहीं है—चाहे उस पर किसी तानाशाह की शासन क्यों न हो। तनिक कल्पना कीजिये कि यदि आप के परिवार का कोई व्यक्ति या अन्य कोई परिजन पुलिस द्वारा किसी ऐसे स्थान पर खींच ले जाया जाए जिस का आप को पता तक भी न मिल सके तो आप के हृदय में अपनी ऐसी सरकार के प्रति क्या भावनाएँ उठेंगी।

समस्त रूसी जनता की ऐसी स्थिति है जिसको गुलामी कहना अनुचित न होगा। प्रत्येक सोवियट नागरिक जहाँ जो काम करता है वहाँ ही उससे बँधा हुआ रहता है, साथ ही उसको हर घड़ी यह आशंका रहती है कि उसके न जाने किस काम से गुप्त पुलिस का उसके ऊपर संदेह हो जाय। विद्वानों और विज्ञानवेत्ताओं में इस निरंतर आतंक के कारण रचनात्मक प्रतिभा और सूझ का बिरवा सूखता जा रहा है। कल-कारखानों के मैनेजर हमेशा इस डर से परेशान रहते हैं कि कहीं उनकी किसी भूल से उनको काले पानी का टिकट न मिल जाय। जो उच्चकोटि के अधिकारी हैं वे भी आतंक से उन्मुक्त नहीं हैं—उनको

याद है सन् १९३६-३८ ई० में किस प्रकार उन्हीं जैसे ४०,००० व्यक्ति मौत के घाट उतार दिये गये थे । इस साधारण जन-संहार में जिनकी जान गयी उनमें से बहुत से तो लाल सेना के उच्च अधिकारी थे और कई स्टालिन के अपने सहयोगी ।

तानाशाह (डिक्टेटर) का उत्तराधिकारी कौन होगा यह सदा ही एक जटिल प्रश्न रहा है, क्योंकि तानाशाही शासन-प्रणाली में इस प्रश्न को हल करने का कोई नियमित साधन या माध्यम नहीं होता । जो अन्त में उत्तराधिकारी बनता है वह अपने अन्य सहयोगियों का समर्थन प्राप्त नहीं कर सकता । यह कठिनाई रूस में तो और भी उग्र रूप धारण किये हुए है क्योंकि वहाँ स्टालिन ने स्वयं राजसत्ता को हड़प लिया था और अपने स्वेच्छाचार को कायम रखने के लिए शक्ति के सभी सूत्रों को अपने ही हाथ में कस कर पकड़ लिया था । स्टालिन जैसी शक्ति और अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति को मिले इसका प्रबंध न तो रूस का शासन विधान कर सकता है, न कम्युनिस्ट पार्टी के फ़रमान, और न मार्क्स ही का कोई फ़तवा । शक्ति के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के निर्मम प्रयास में स्टालिन कम्युनिज़्म के एक आधारभूत सिद्धान्त ही को ठुकरा चुका है । कम्युनिज़्म के मूल सिद्धान्तों के अनुसार शासन-प्रणाली एकात्मक नहीं वरन् सर्वात्मक होनी चाहिए । स्टालिन समस्त शक्ति को अकेले अपने ही हाथों में सम्हाले हुए है । उसने कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति को पीछे ढकेल दिया है, और अपने विषय में ऐसी सार्वजनिक धारणा पैदा करवा दी है कि रूस की जनता उसको एक ऐसा देवता समझने लगी है, जिसका उत्तराधिकारी इस मर्त्यलोक का प्राणी नहीं हो सकता । ऐसी बात सोचना तक उसकी नज़र में पाप है ।

संभवतः इस बात को जानते हुए स्टालिन रूस के शासन-विधान

विश्व शान्ति के डपाय

का प्रभय ले कर अपने मरने के बाद राजसत्ता को अपने नायकों में विभाजित कराना चाहेगा। किन्तु मुश्किल तो यह है कि स्वेच्छाचारिता को बाँटा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए यह कैसे हो सकता है कि एक ३३ $\frac{1}{3}$ प्रतिशत तानाशाह दूसरे दो ३३ $\frac{1}{3}$ प्रतिशत तानाशाहों से सहयोग करता रहे ? यह संभव है कि जल्दी या देर में—ऐसा दिखाई देता है कि जल्दी ही इनमें से एक तानाशाह, या दो तानाशाह, या तीनों ही तानाशाह अपने-अपने बारे में यह सोच बैठें कि समस्त राज-सत्ता जब तक मेरे हाथ में नहीं आयेगी जब तक ग़रीब जनता का कल्याण नहीं हो सकता। तभी ऐसी स्थिति पैदा हो जायगी कि आपस ही में मार काट शुरू हो जाय—इस मारकाट में संभवतः रूस की सेना एक का साथ देगी और गुप्त पुलिस दूसरे का।

निरसंदेह स्टालिन की मृत्यु तो उन अनेक संभावनाओं में से केवल एक ही है जिनके कारण रूस में आंतरिक कलह, उत्पात, उथल-पुथल और विद्रोह हो सकता है।

जान फ़ास्टर डलेस का कहना है कि इस समय रूस के चंगुल में जो विशाल जन समूह आ फँसा है, उसकी राष्ट्रीय आकांक्षाओं और कम्युनिज़्म की विश्व विजय करने की कामना में एक गहरा व्याघात छिपा है। उनका यह दृढ़ मत है कि समय आने पर इस व्याघात का परिणाम राष्ट्रीयता के पक्ष में होगा—तब रूस पर रूसियों का, पोलैण्ड पर पोलैण्डवालों का, और हंगरी पर हंगरी वालों ही का आधिपत्य रह जायगा। जनरल मैक आर्थर का मत है कि स्टालिन की मृत्यु से यह वास्तविक व्याघात स्पष्ट रूप से सामने आ जायगा।

यदि युगोस्लाविया की तरह किसी ओर पिटू ने रूस के चंगुल से निकल कर भागने की कोशिश की तो भी इस प्रकार की घटनाएँ देखने

में आ सकती हैं। वास्तव में यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि रूस के शासक युगोस्लाविया की तरह अन्य किसी कम्युनिस्ट देश के विद्रोह से प्रायः उतने ही सशंक रहते हैं जितने अमरीका जैसे पूँजीवादी देश के नैसर्गिक वैर से। सोवियट रूस के दिवोरची यह कहते हुए नहीं थकते कि अमरीका की जनता तो युद्धलिप्सा रखनेवाले पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली है। किन्तु जब मार्शल टिटो को जो कल तक उनकी नज़र में एक वीर सेनानी, और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिज़म की उज्ज्वल आशा होने का गुणगान सुन चुका था, ये खोग अतीत की इन सब बातों को भूल कर फ़ासीस्ट और देशद्रोही कह कर बदनाम करें तो कितने आदमी इनकी बात सुनेंगे ? युकेन का अन्य किसी प्रदेश में विद्रोह होने से भी रूस की हँडिया में भारी सूरक हो सकता है। मेरा विश्वास है कि इधर इटली में जहाँ उसको इतनी आशाएँ थीं, कम्युनिस्ट पार्टी में जो विग्रह हुआ है, और अन्य देशों में इसी प्रकार जो आंतरिक विग्रह होनेवाला है, उससे स्टालिन अवश्य ही चिंतित होगा।

मेरी व्यक्तिगत राय में रूस के शासकों के पतन की सबसे बड़ी आशा जनता की स्वाधीनता की भावना से ही बंधती है। विश्व इतिहास के क्रम के पीछे यही भावना काम करती रही है। यद्यपि ब्रिटेन और पोलैण्ड का शासन अपेक्षतया भद्र और कल्याणकारी था, हिन्दुस्तान और इंडोनेशिया ने देर तक उनके शासन को स्वीकार नहीं किया; हिन्दुस्तान और इंडोनेशिया की स्वाधीनता इसी ऐतिहासिक भावना का प्रतीक है। मैंने कोरिया में देखा था कि यद्यपि जापान उन पर ५० वर्ष तक शासन करता रहा था, कोरियावासियों में स्वाधीनता की भावना लुप्त नहीं हो सकी थी। पहले विश्वयुद्ध के पश्चात् पोलैण्ड ने १४६ वर्ष की पुरानी दासता की बेड़ियों को तोड़ दिया था क्यों कि उनके हृदय में

विश्व शान्ति के उपाय

अपना शासन स्वयं करने की उत्कट प्यास थी। मुझे आशा है कि वे और चेकोस्लोवाकिया के लोग पुनः स्वाधीनता प्राप्त कर सकेंगे। जनता की यह आकांक्षा रूस के शासकों के लिए भारी खतरा है। यह हो सकता है कि स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् रूस में जो शासन-प्रणाली होगी उस पर इसका भारी असर पड़े और रूस की विदेश नीति ही बदल जाय।

यदि इन सब संभावनाओं में से कोई एक पूरी हो सकी तो हो सकता है रूस का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में जो आवश्यकता वश अत्याचार का मार्ग छोड़ कर, जनता को स्वाधीनतापूर्वक साँस लेने का अवसर दे दें, भतिक्रमण से वाज़ आयें, और दूसरे देशों से जो व्यवहार रखें उस में कुछ थोड़ी-सी भद्रता दिखायें। ऐसी अवस्था का उत्पन्न होना दोनों सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ-साथ रह सकने की संभावना का काफी बड़ा प्रमाण होगा। सब से अच्छी बात जिस की आशा भी जाती है यह है कि रूस में विप्लव हो जाय, और जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली की स्थापना हो जाय; यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही विश्व शांति का ठोस आधार रखा जा सकेगा।

इन सब संभावनाओं को ध्यान में रख कर, हम को अपने चहुँ-मुखी शांति संस्था को आगे चलाते समय अपने दोहरे लक्ष्य को सामने रखना चाहिए। पहले तो हम सैन्य शक्ति, अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता एवं कल्पना को बढ़ा कर अपने आप को पूरी तरह मजबूत बनायें, दूसरे, शांति-संघर्ष को चलाते हुए ही ऐसी घटनाओं का सूत्रपात करते रहें, जिन से रूस के शासक अपने “झौह पट्ट” के पीछे बैठने को मजबूर हो जायें, या उन के शासन ही का अंत हो जाय।

मैं प्रत्येक दृष्टि से व्यापारी ही हूँ, इस लिए यह जानता हूँ कि शांति संघर्ष का जो कार्यक्रम मैंने दिया है, उस से हमारे कर भार को कम करने या वज्रट को संतुलित करने में तुरंत ही सहायता नहीं मिल सकती। पर जब तक स्थायी शांति की स्थापना नहीं होगी तब तक ठंडी लड़ाई या खुलो लड़ाई में खर्च होने वाले भ्रष्टों ढाकड़ों में कमी नहीं की जा सकती। स्थायी शांति की स्थापना ही से हम इतनी बचत कर सकेंगे कि करों का भार भी कम हो जाय और प्रतिवर्ष वज्रट भी संतुलित होता रहे।

करों में कमी होने से जो लाभ होता है, उस से तो सभी परिचित हैं, किन्तु वज्रट-संतुलन के महत्व को बहुत से लोग पूरी पूरी तरह नहीं समझ पाते। संसार के विभिन्न देशों की सरकार किस तरह काम चलाती है, यह मैं अपनी आँखों से देख चुका हूँ। उसी नाते से मैं जोर के साथ यह बात कह सकता हूँ कि जिस देश की सरकार देर तक अपनी आय से अधिक खर्च करने लगती है तो उस देश की जनता सदा ही कठिनाइयों में फँसी रहती है, और कभी कभी तो उस को विनाश तक का मुँह भी देखना पड़ता है। जो सरकार अपनी आय से अधिक व्यय नहीं करती वह ही ऐसी आर्थिक स्थिरता की स्थापना कर सकती है जिस के बिना सबल एवं विकासार्थक आर्थिक जीवन को संगठित नहीं किया जा सकता।

रस विहीन आर्थिक स्तर पर इन बातों का सम्बन्ध सरकार की अर्थ नीति अथवा भौतिक स्थायित्व एवं साख से है; नैतिक स्तर पर, स्थायी शांति का आविर्भाव बीसवीं शताब्दी का सब से अधिक महत्वपूर्ण एवं अभिप्रेरणा-पूर्ण घटना होगी। इस का अर्थ यह होगा कि ३७ वर्ष में प्रथम बार युद्ध या संभाव्य युद्ध का डर जाता रहेगा। इस का

विश्व शान्ति के उपाय

अर्थ यह होगा कि युद्ध या युद्ध की तैयारी पर इस समय जो अरबों डालर खर्च हो रहे हैं, उन को रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सकेगा। गोले-बारूद पर हम को जो ५० अरब डालर खर्च करने पड़ेगे उन में से केवल एक अरब डालर ही से लगभग दो लाख छात्रों को हमारे प्रमुख कालिजों और विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने के लिए एक-एक साल की छात्रवृत्तियाँ दी जा सकती हैं। न्यूयार्क, शिकागो, मेम्फीज और लास एंजिलिस के मजूरवासों को स्वस्थ कर एवं स्वच्छ भवनों में परिणत करने के लिए हमारे पास तब ४० अरब डालर होंगे; अणु की चमत्कारिक शक्ति का शांति निर्माण कार्यों के लिए अनुसंधान और विकास करने के लिए दस करोड़ डालर मिल सकेंगे।

इस समय हमारे ऊपर भारी दबाव है; और हम चिंतामग्न हैं; तिस पर भी हम इतिहास के एक गर्वपूर्ण युग में रह रहे हैं। यदि हम शांति-संवर्ष को चलाते रहे और इस में विजय प्राप्त कर सके तो हम इस शताब्दी के इस मध्य बिन्दु को मानव जाति के सबसे महान् भाग्य-परिवर्तन का रूप दे सकेंगे। इसी में मानव जाति के लिए प्रथम बार वास्तविक शांति पा सकने की संभावना विद्यमान है।

परिणाम

आने वाले दस वर्षों में हमको शांति संवर्ष के लिए संलग्नता और चातुर्य के साथ प्रयत्न, परिश्रम और बलिदान करने को उद्यत रहना चाहिए। हमारा उद्देश्य अपनी संतान और संतान की संतान के प्रति की गयी शांति प्रतिष्ठान-प्रतिज्ञा ही को पूरा करना नहीं है, वरन् सोवियट रूस की दासता में जकड़े हुए मानव-प्राणियों को मुक्त कराना भी है। शांति की इस तीर्थ यात्रा में आनेवाली कठिन एवं कठोर

बाधाओं की ओर से यही हमको चुनौती मिली है, और यही पुरस्कार । हमको यह अवसर प्राप्त है कि हम बीसवीं शताब्दी के इस मध्य बिन्दु को मानव जाति के कायाकल्प के श्रोत में परिणत कर दें । यदि हम आत्मविश्वास का सम्बन्ध ले कर इस अवसर को ग्रहण कर सके तो मानव जाति के विश्वास पात्र सिद्ध हो सकेंगे । केवल इसी प्रकार हमको इस निर्णयात्मक दशब्दी के समाप्त होने के बाद उस घड़ी को देखने की आशा है जब मानव जाति के इतिहास में प्रथम बार स्थायी शांति का श्रीगणेश किया जा चुका होगा ।
